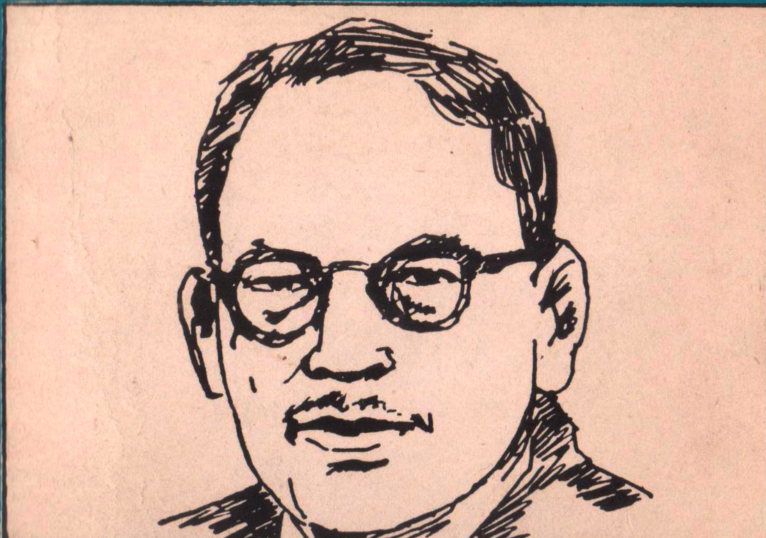
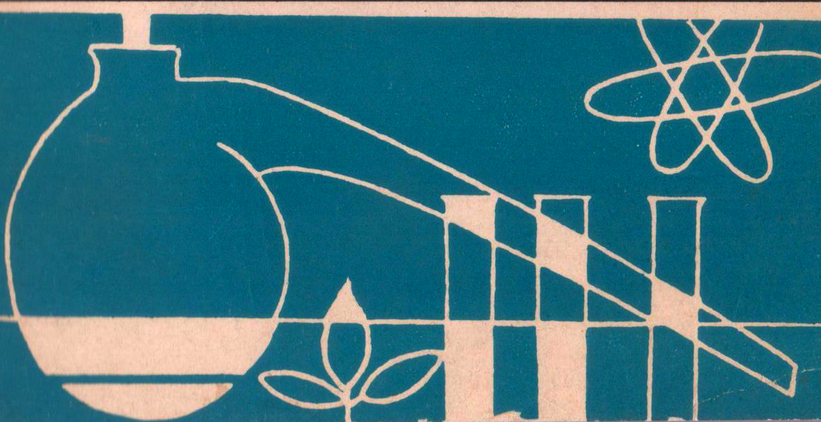


भारत के वैज्ञानिक

मेघनाद साहा



भारत के महान वैज्ञानिक

मेघनाद साहा

विश्वमित्र शर्मा

शिक्षा भारती, कश्मीरी गेट, दिल्ली

मूल्य : पांच रुपये (5.00)

संस्करण 1985
MEGHNAD SAHA (Biography), by Vishwamitra Sharma

क्रम



स्योरातालो

भारत गांवों का देश है ।

अस्सी प्रतिशत से अधिक जनता गांवों में रहती है। गांव की धरती से उसका सीधा संबंध है। गांव की सोंधी मिट्टी, धूल भरी पगडंडियां, कीचड़ भरे नदी-नाले, कछुओं और मछलियों से भरे हुए पोखर, गांव के जीवन का अंग हैं ।

चारों ओर फैली हुई हरियाली, फसल कटने पर चारों ओर उड़ती हुई धूल, जहां-तहां फैले हुए पेड़-पौधे भारत के गांवों का स्वरूप उपस्थित करते हैं।

और इसी तरह वहां रहने वाला सीधा सादा किसान गांवों की धरती से ऐसा जुड़ा है, जिसे न तो मानसिक रूप से अलग किया जा सकता है और न शारीरिक रूप से । जैसी सीधी सादी प्रकृति गांवों की है, वैसी ही सीधी-सादी प्रकृति के लोग वहां बसते हैं ।

धीरे-धीरे गांवों के लोग शहरों की तरफ आने लगे और

शहरों में बढ़ती हुई आबादी, ऊंचे-ऊंचे मकान, सरकारी दफ्तर और उनमें काम करनेवाले बाबू लोगों को देखकर ऐसा प्रतीत होने लगा, कि शहर आगे निकल जाएंगे और गांव पीछे पड़ जाएंगे। जब शहरों ने गांवों को पीछे धकेलने की कोशिश की, तभी गांवों ने एक ऐसा करिश्मा दिखाया कि शहर वाले देखते रह गए।

इस बात को यदि यों कहा जाए, तो इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि संसार के जितने भी महान् पुरुष हुए, वैज्ञानिक, धार्मिक नेता अथवा राजनीतिक नेता तक सभी गांवों की ही पैदावार थे।

आज की हमारी इस कथा का चरित्र नायक भी एक गांव की संतान था और उसका नाम है मेघनाद साहा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के दो टुकड़े हुए और उन दो टुकड़ों में भी कुछ समय बाद ऐसा परिवर्तन आया कि वह दो से तीन हो गए, भारत, पाकिस्तान और बांग्ला देश।

मेघनाद साहा के गांव का नाम स्योरातालो, ढांका जिले में होने के कारण यह अब बांग्लादेश में है।

गांव बहुत छोटा था। आज की परिभाषा में आप उसे एक पिछड़ा हुआ गांव भी कह सकते हैं। गांव के अधिकतर लोग खेती-बाड़ी करते थे। जिन दिनों यह सारा क्षेत्र बंगाल के नाम से प्रसिद्ध था, उन दिनों वहां के निवासी एक छोटा-सा खेत, दो चार नारियल के पेड़, मछली पालने के लिए छोटा-सा पोखर प्राप्त करके अपने को बड़ा सौभाग्यवान व्यक्ति मानने लगते थे।

भारत के गांवों की कहानी भी बड़ी विचित्र है। विभिन्न प्रदेशों के गांवों में प्राकृतिक रूप से देखने पर जहां एकरूपता दिखाई देती है, वहां उनमें अन्तर भी बहुत है। कच्चे पक्के मकान, झोपड़ियां गांव से कुछ दूरी पर तालाब या पोखर आपको सभी जगह मिल जाएंगे। परन्तु हमारे प्रत्येक प्रदेश के गांव अपनी एक विशेषता भी लिए हुए हैं।

मेघनाद साहा का जन्म 6 अक्तूबर, 1894 को हुआ। उस समय कौन कह सकता था कि इस छोटे से गांव में पैदा होने वाला यह बालक कभी कोई ऐसा काम कर जाएगा, जिससे उसका नाम भारत में ही नहीं, संसार के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा।

किस को पता था, माता-पिता की यह पांचवीं संतान अपने कुल को ही नहीं, अपने देश का नाम भी उजागर कर देगी ?

छोटी-सी दुकान

गांव में बिकने वाला सौदा-सुल्फ—परचून का सामान, नमक, मिर्च, माचिस, खट्टी-मीठी गोलियां, चिउड़ा, भात और गुड़, यही सब दूकान पर बिकता था।

क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि दुकान कितनी बड़ी होगी और कितनी आमदनी रही होगी ? और उस पर पांच बच्चे और माता-पिता उस दुकान से गुज़ारा करते थे ? परन्तु भारत में गांवों में रहने वाले आधा पेट रह कर भी भगवान का धन्यवाद करते हैं और अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं।

'गुदड़ी का लाल' की कहावत इन गांवों की ही तो देन हैं।

परिवार का भरण-पोषण इसी दुकान के सहारे चलता था। निश्चय ही दिन बड़ी तंगी से गुज़रते होंगे। परन्तु जैसा मैंने अभी कहा, आज भी अधिकांश भारतीय जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकताएं पूरी तरह प्राप्त नहीं कर पाते, तो भी वे अपने जीवन में असंतुष्ट नहीं दिखाई देते। भगवान का नाम उस तंगी को किस प्रकार पूरा करता है, इस रहस्य को समझने के लिए इन गांवों में रहने वाले लोगों की संगति करना आवश्यक है। यह बात आज भारत के गांवों पर ही नहीं, यहां के शहरों पर भी लागू होती है और यह बड़ी विचित्र बात है कि अभी इस भारत की धरती में ऐसे-ऐसे फूल खिलते हैं, जिनकी महक सदा-सदा के लिए बनी रहती है।

मेघनाद के पिता सारा दिन दुकान पर बैठे रहते थे। छोटे-छोटे भाई-बहन काम-धंधे में अपनी मां का हाथ बंटाते थे। मेघनाद साहा के पिता जगन्नाथ साहा इस बात की आशा करते कि मेघनाद भी उनके साथ दुकान के काम में हाथ बंटाए और उनका ऐसा सोचना कोई असाधारण बात न थी। इस प्रकार की परिस्थिति में कोई भी पिता अपने बच्चों से इसी प्रकार की आशा रख सकता है। और इस में हानि भी क्या है?

गांव में एक छोटी-सी पाठशाला थी। साथ में 7 मील दूर मिडिल स्कूल। और 23 मील दूर था ढाका, जहां था एक हाई स्कूल। गांव के अधिकांश बच्चे इसी प्रारम्भिक पाठशाला में ही अक्षर-ज्ञान प्राप्त करते और अपनी जीवन यात्रा पर निकल पड़ते। वे लोग भी गांव के पढ़े-लिखे लोगों में गिने जाते थे जिन्हें अपना नाम भर लिखना आता था।

परिवार के दिन बहुत तंगी से गुज़र रहे थे, परन्तु मेघनाद की माता भुवनेश्वरी देवी बहुत ही सुघड़ महिला थी और घर का गुज़ारा जैसे तैसे इस प्रकार चलाती थी, जिससे बच्चों को विशेष अभाव प्रतीत न हो।

सो मेघनाद को भी गांव की प्राथमिक पाठशाला में पढ़ने के लिए गुरुजी को सौंप दिया गया। पिता की इच्छा थी कि उनका बेटा मेघनाद अक्षर ज्ञान प्राप्त करने के बाद उनके साथ दूकान पर उनके काम में हाथ बंटाए। घर की परिस्थितियां ऐसी थीं कि वह कुछ और सोच भी न सकते थे। इसमें उनका कोई दोष भी नहीं था, परन्तु होता वही है, जो 'मंजूरे खुदा' होता है। आदमी सोचता कुछ है, परन्तु जो कुछ कार्य रूप में परिणत होता है, उसकी सम्भावना पहले से नहीं की जा सकती।

बात ऐसी थी कि मेघनाद के पिता स्वयं भी बहुत अधिक पढ़े-लिखे न थे। अपना आयु और इस संसार सागर से थपेड़े खाकर उन्होंने उतना ज्ञान प्राप्त किया था, कि जैसे तैसे यह

दूकान चला लें और घर गृहस्थी की गाड़ी धीरे-धीरे खिसकती रहे।

पिता में किसी प्रकार की महत्वाकांक्षा भी न थी। उन्होंने कभी यह सोचा भी न था कि गांव की प्रारम्भिक पाठशाला के बाद 7 मील दूर के मिडिल स्कूल में वह अपने बच्चे को पढ़ा सकेंगे। नन्हे से मेघनाद को प्रतिदिन सात मील दूर भेजने का न तो कोई प्रबन्ध था और न वहां पढ़ाने के लिए बच्चों को भर्ती ही कराया जा सकता था। इस बात के दो कारण थे। न तो उनके पास पैसा था और न वह अपने बच्चों को परिवार से अलग रखना स्वीकार कर सकते थे।

गांव के बच्चों के लिए ऐसा हुआ ही करता है, चाहे बेटा किसान का हो, या दूकानदार का, बनिये-बक्काल का, बढ़ई लुहार का। सभी की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि बेटा जरा-सा हाथ चलाने के काबिल हो, तो उनके साथ काम धंधे में जुट जाए, उसी में बड़ा हो, उसी में बाल-बच्चे पैदा करे और कोल्हू के बैल की तरह उसी में मर-खप जाय।

मेघनाद सामान्य बच्चों से भिन्न था। पढ़ाई लिखाई में उसका खूब मन लगता और वह जितना अधिक-से-अधिक हो सकता, किताबें पढ़ने को कोशिश करता।

पाठशाला से घर की ओर चलते हुए उसकी पीठ पर बस्ता तो लटकता ही था, उसका मुंह भी लटक जाता था, क्योंकि उसे पता था कि घर पहुंचते ही उसके पिता दूकान पर बैठने की बात कहेंगे।

मेघनाद मां बाप का आज्ञाकारी पुत्र था। इसलिए पाठशाला से आते ही बस्ते को एक ओर फेंक, पिता की आज्ञा के अनुसार उनके साथ दूकान पर जा बैठता और अपने नन्हें-नन्हें हाथों से जो कुछ भी कर सकता, करने में कोई कसर न छोड़ता। परन्तु उसका मन न जाने कहां खोया रहता।

सम्भवतः किताबों में।

परन्तु गांव के वातावरण में पिता की दुकान पर इस प्रकार के साधन नहीं थे कि उसकी इच्छा पूरी हो पाती। वह मन मसोस कर रह जाता और ऊपरी मन से पिता के काम में हाथ बंटाता रहता।

"खोका, इसे यहां रख दो, उसे वहां रख दो, माचिस की डिबियां पकड़ाना, एक लोटा पानी ले आना, घर से जाकर खाने के लिए थोड़ा भात ले आना," यही कुछ तो था सारा दूकान का काम।



सात मील दूर का स्कूल

आखिर जैसे-तैसे मेघनाद ने गांव की प्रारम्भिक पाठशाला से बड़े अच्छे नम्बरों में पढ़ाई समाप्त कर ली। उसकी इच्छा हर समय आगे पढ़ने की रहती थी। परन्तु पिता यह चाहते थे कि वह दुकान के काम में उनका हाथ बंटाए।

एक दिन की बात, मेघनाद के पिता जगन्नाथ साहा दुकान पर बैठे थे कि पाठशाला के गुरुजी उधर से गुजरे। नमस्कार प्रणाम के बाद गुरुजी बोले, "मेघनाद तो पढ़ने में बहुत अच्छा लड़का है, इसे आगे पढ़ाने का प्रबंध क्यों नहीं करते?"

पिता बोले, "रोज-रोज बच्चे को सात मील दूर कैसे भेजा जाए। और मेरी आर्थिक स्थिति भी ऐसी नहीं कि मैं सभी बच्चों की पढ़ाई का बोझ उठा सकूं। ऐसा कोई प्रबंध भी नहीं कि सात मील दूर कस्बे में मेघनाद को किसी के घर रहने का प्रबंध भी कर सकूं।"

मेघनाद के बड़े भाई जयनाथ हाईस्कूल तक पढ़े थे। उन्होंने

स्वयं भी अनुभव किया था और अध्यापकों के कहने के कारण उनकी इच्छा थी कि मेघनाद को आगे पढ़ाया जाए।

उनके गांव स्योरातालो से सात मील दूर एक छोटे से सिम्भूलिया नामक कस्बे में मिडिल स्कूल था। किसी भी छोटे से बच्चे के लिए पढ़ने के लिए प्रति दिन सात मील चल कर जाना और सात मील चलकर वापिस घर आना कैसे संभव हो सकता था ?

मेघनाद के बड़े भाई जयनाथ सिम्भूलिया गए। वहां उनके परिचित डॉक्टर अनन्त कुमार दास रहते थे। जयनाथ ने अपने भाई के सम्बन्ध में सारो समस्या का उनसे वर्णन किया।

अनन्त कुमार ने मेघनाद को अपने घर रहने की अनुमति दे दी और वह मिडिल स्कूल में भर्ती हो गया।

डॉक्टर अनन्त कुमार दास ने देखा कि बालक होनहार और प्रतिभाशाली है। उन्होंने घर में रहने की सुविधा के साथ-साथ पढ़ाई के लिए अन्य उपयुक्त सहायता भी प्रस्तुत कर दी।

अनन्त कुमार दास के लिए इससे बड़ी प्रसन्नता की और क्या बात हो सकती थो कि जब आठवीं कक्षा की परीक्षा के परिणाम सामने आया तो मेघनाद पूरे ढाका जिले में सबसे आगे था।

अब क्या था। सारे जिले में प्रथम आने के कारण हाईस्कूल में पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति मिल गई। इससे घर की कुछ चिंताएं कम हुई और मेघनाद को आगे पढ़ने का अनायास एक अवसर मिल गया। यह बात सन् 1905 की है।

मेघनाद ने ढाका के कालेजिएट स्कूल में अपना नाम लिखवाया। योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति के साथ-साथ फीस में भी कुछ रियायत मिलती थी। उनका विचार था कि अब कुछ वर्ष तक पढ़ाई निर्विघ्न रूप से हो सकेगी। परन्तु उसी समय मेघनाद के रास्ते में एक रुकावट आई।

रुकावटें सभी के जीवन में आती हैं। यही मनुष्य की जीवट के परीक्षा के दिन होते हैं। कुछ लोग डगमगा जाते हैं और कुछ

उनकी परवाह न करते हुए आगे बढ़ते ही रहते हैं।

उन दिनों भारत के अंग्रेज़ आकाओं ने बंगाल को दो भागों में बांटने का फैसला किया। ऐसी घोषणा करते ही एक बड़ा जोरदार आन्दोलन बंगाल में शुरू हुआ। उस समय न केवल विदेशी शासन से स्वतंत्र होने की जोरदार जद्दोजहद चल रही थी बल्कि दिनों दिन आन्दोलन जोर पकड़ रहा था।

इतना ही नहीं, उन दिनों स्वदेशी वस्तुओं के लिए भी आन्दोलन प्रारंभ हो चुका था। इसमें विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार विदेशी कपड़े की होली और स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग की एक जोरदार लहर उठ चुकी थी।

बंगाल ने जहां देश को महान कवि, कलाकार और राजनीतिज्ञ दिए वहां क्रान्तिकारियों ने भी अपनी भूमिका अदा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। ऐसे समय भला बंगाल का तरुण छात्र वर्ग कैसे पीछे रह सकता था? युवकों ने अपनी पढ़ाई की चिंता न करते हुए बंग-भंग के निर्णय का संगठित होकर विरोध किया।

उन दिनों बंगाल के गवर्नर का नाम था लार्ड रैम्पफील्ड फुलर। वैसे वह बड़ा समझदार और सुयोग्य प्रशासक था। उसने इस आन्दोलन की नब्ज को पहचाना और हर ऐसा संभव प्रयत्न किया कि स्कूल और कालेज के युवा छात्र वर्ग को इस आन्दोलन से पृथक् रखा जा सके। परन्तु यह कैसे संभव हो सकता था। उसने इसके लिए पूरे बंगाल के स्कूलों और कालेजों का दौरा किया और वहां के प्रिंसिपलों तथा अन्य अध्यापकों से मिल कर इस बात का प्रयत्न किया कि विद्यार्थी इस आन्दोलन से दूर रहें।

घूमता-फिरता गवर्नर सिम्भूलिया के छोटे से स्कूल में पहुंचा तो वहां के बच्चों ने भी बंग-भंग निर्णय के विरोध में हड़ताल कर रखी थी। कालेजों अथवा हाईस्कूलों में हड़ताल होना तो एक महत्वपूर्ण बात थी ही, परन्तु मिडिल स्कूल के छात्रों ने

हड़ताल करके एक ऐसा उदाहरण पेश किया था जिससे उसने यह अनुमान लगाया कि इस आन्दोलन की जड़ें किस गहराई तक पहुंच चुकी हैं।

हड़ताली छात्रों में मेघनाद भी था। अंग्रेज़ सरकार के हुक्म से स्कूल-कालेजों के हड़ताली छात्रों के नाम काट दिए गए। भला मेघनाद इस प्रहार से कैसे बच सकता था ?

यहीं तक बात रहती तो संभवतः ठीक था। परन्तु मेघनाद छात्रवृत्ति पाने वाला एक निर्धन परन्तु होनहार छात्र था। हड़ताल में भाग लेने के कारण फौरन ही उसकी छात्रवृत्ति भी बंद कर दी गई। छोटे-छोटे बच्चों के लिए देशभक्ति का यह अनोखा पुरस्कार था। विदेशी सरकार अपने विरोध में चलाए गए किसी भी आन्दोलन को कैसे अच्छा मान सकती थी ? वह देशभक्ति की इस भावना को गुमराह छात्रों की भावना मानती थी।

जनता में उन दिनों आपसी सहयोग की एक ऐसी भावना काम कर रही थी जिसके कारण मेघनाद को विशेष कष्ट न हुआ और इस होनहार विद्यार्थी को किशोरीलाल जुबली नामक निजी स्कूल में दाखिला मिल गया। मेघनाद की योग्यता के सम्बन्ध में तो किसी को सन्देह था ही नहीं, छात्रवृत्ति बंद होने से उत्पन्न आर्थिक संकट को उस स्कूल के प्रबंधकों ने दूर कर दिया। किशोरीलाल जुबली स्कूल की प्रबंधक कमेटी ने मेघनाद को छात्रवृत्ति भी दे दी। मेघनाद ने अपनी योग्यता, लगन और परिश्रम से इस स्कूल के अध्यापकों के हृदय में भी सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया।

इस स्कूल के विद्वान शिक्षक अपने-अपने विषय के प्रकाण्ड पंडित थे। वह मेघनाद की योग्यता के कारण उससे स्नेह भी खूब रखते थे। वस्तुतः देखा जाय तो किसी व्यक्ति पर किसी दूसरे व्यक्ति का स्नेह उसके गोरे चिट्टे होने या लम्बे-चौड़े डील-डौल के कारण नहीं होता, वरन् उसके गुणों के कारण होता है।

इस सम्बन्ध में मेघनाद सौभाग्यशाली था कि उसे विद्वान अध्यापकों के अतिरिक्त देशभक्ति से ओतप्रोत अध्यापकों का स्नेह प्राप्त हुआ था।

उन्हीं दिनों बंगाल में ईसाई मिशनरियों ने स्थान-स्थान पर बाइबिल पढ़ाने के लिए कक्षाएं लगाना आरंभ किया। उनकी इच्छा बाइबिल के उपदेश से इतनी सम्बद्ध न थी जितना ईसाई धर्म के प्रचार से। उनका विचार लोगों को ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट करने का था।

मेघनाद ने भी यह सब देखा क्योंकि ईसाई मिशनरियों ने ढाका में इस प्रकार की अनेक स्थानों पर कक्षाएं प्रारंभ की थीं। कौतूहलवश ज्ञान प्राप्त करने के लिए मेघनाद भी उन कक्षाओं में जाने लगे। उनका उन कक्षाओं में भाग लेने का एकमात्र कारण धर्म सम्बन्धी अपनी जिज्ञासा को शांत करना था।

इन कक्षाओं के आयोजन के बाद ईसाई धर्म-प्रचारकों ने बाइबिल ज्ञान के सम्बन्ध में एक प्रतियोगिता परीक्षा करने का निश्चय किया। मजेदार बात यह थी कि मेघनाद इस प्रतियोगिता परीक्षा में भी बंगाल भर में सर्वप्रथम आए। उस प्रतियोगिता की एक विशेषता यह थी कि उसमें स्कूल और कालेजों के छात्रों ने भी हिस्सा लिया था। पुरस्कारस्वरूप उन्हें एक सौ रुपये और बाइबिल की एक सुन्दर प्रति भेंट की गई।

मैट्रिक की परीक्षा के दिन भी निकट आ रहे थे। मेघनाद ने अंग्रेज़ी, बंगला, संस्कृत और गणित आदि में विशेष रुचि ली थी। और 19:9 में जब मैट्रिक की परीक्षा का परिणाम निकला तो सम्पूर्ण पूर्वी बंगाल में मेघनाद का नाम सबसे ऊपर था। वह सर्व प्रथम आए थे। उक्त विषयों में उन्होंने सबसे अधिक नम्बर प्राप्त किए थे। मेघनाद के जीवन की यह एक और बड़ी विजय थी। जिससे उनकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त हुआ।



कालेज शिक्षा

मैट्रिक परीक्षा में सर्वप्रथम आने के बाद मेघनाद ने बड़े सम्मान के साथ ढाका कालेज में प्रवेश प्राप्त किया।

मेघनाद की रुचि विज्ञान विषयों की ओर दिनोंदिन बढ़ रही थी। उन दिनों विज्ञान सम्बन्धी अच्छी पुस्तकें जर्मन भाषा में थीं इसलिए जो भी छात्र विज्ञान सम्बन्धी कोई विषय लेना चाहता था तो उसके लिए आवश्यक हो जाता कि वह जर्मन भाषा सीखे। जर्मनी में विज्ञान की अत्यधिक प्रगति के कारण विज्ञान सम्बन्धी सर्वोत्तम साहित्य भी जर्मन भाषा में ही था। इसलिए मेघनाद ने विज्ञान के साथ-साथ जर्मन भाषा भी पढ़ना प्रारम्भ किया।

वैसे भी उन दिनों जर्मन भाषा एक ऐच्छिक विषय भी थी। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान और गणित के साथ-साथ एक चतुर्थ विषय के रूप में जर्मन भाषा लेने से परीक्षा में अधिक अंक प्राप्त होने की सम्भावना रहती थी। मेघनाद ने यह सब बातें ध्यान में रखकर परीक्षा की पढ़ाई प्रारम्भ की।

सौभाग्य से यहां भी उन्हें बहुत ही सुयोग्य अध्यापकों से शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। नगेन्द्रनाथ सेन ढाका कालेज में प्रोफेसर थे और वियना से पी० एच० डी० करके लौटे थे। मेघनाद को उनसे रसायन विज्ञान पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। जर्मन भाषा सीखने के लिए भी उन्हीं से प्रेरणा और भारी मदद मिली। उसी कालेज में के० पी० वसु नामक एक और विख्यात बीजगणित के विद्वान थे। मेघनाद की गणित की क्लास वही लिया करते थे।

मेघनाद ने अपने परिश्रम, विद्याध्ययन में लगन और प्रतिभा के कारण इस कालेज में भी अपने प्रायः सभी गुरुजनों से स्नेह प्राप्त कर लिया। कालेज के प्रधानाचार्य तो मेघनाद को अपने पुत्र के समान ही मानते थे।

1911 में मेघनाद ने इंटर परीक्षा पास की। वह प्रथम श्रेणी में पास हुए। गणित और रसायन विज्ञान में पूरे राज्य में उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया और पूरे बंगाल में तीसरा स्थान।

कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में

1911 में उन्होंने कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में बी० एस-सी० आनर्स के छात्र के रूप में प्रवेश प्राप्त किया। उनका मुख्य विषय गणित था।

मेघनाद साहा का यह सौभाग्य था कि उनके साथ पढ़ने वाले अनेक छात्र आगे चलकर महान व्यक्ति बने। सुप्रसिद्ध विज्ञान वेत्ता सत्येन्द्र नाथ बोस मेघनाथ साहा के सहपाठी थे। इसके अतिरिक्त अनेक सहपाठियों में जगदीशचन्द्र बोस, जे० एन० मुकर्जी और निखिल रंजन सेन अधिक प्रसिद्ध हैं।

कुछ अन्य प्रमुख व्यक्तियों में पी० सी० महालनवीस, एन० आर० धर तथा सुभाष चन्द्र बोस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं परन्तु ये मेघनाद से आगे-पीछे की कक्षाओं के छात्र थे।

उस समय कलकत्ता का प्रेसीडेंसी कालेज बहुत ही महत्त्व-

पूर्ण शिक्षा-संस्थान था। भारत के अनेक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा विद्वान उस कालेज में शिक्षक के रूप में कार्य कर रहे थे। आचार्य जगदीश चन्द्र बसु भौतिक विज्ञान तथा आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय रसायन विज्ञान पढ़ाया करते थे। ये व्यक्ति अपने-अपने विषयों के महान ज्ञाता ही नहीं थे, वरन भारतीयता से ओतप्रोत महान देशभक्त भी थे। जगदीश चन्द्र बसु ने तो इस कालेज में तीन साल तक शिक्षक के रूप में वेतन न लेकर एक ऐसा आदर्श कायम किया था, जिससे विद्यार्थी बहुत प्रभावित थे। उन्होंने तीन साल के संघर्ष के बाद अपना वेतन गोरे शिक्षा अधिकारियों के बराबर करवा लिया था। आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय ने भी इस कालेज में अपनी नौकरी योग्यता द्वारा ही प्राप्त की थी।

मेघनाद जैसे मेधावी छात्र पर इस प्रकार के महान व्यक्तियों का प्रभाव कैसे न पड़ता ? इन महान् व्यक्तियों के निकट सम्पर्क में रह कर मेघनाद की रुचि दिनोंदिन विज्ञान के प्रति गहरी होती गई। आप जानते हैं, विज्ञान के विद्यार्थी के लिए अनुसंधान और परीक्षण आदि करना कितना महत्त्वपूर्ण है और इस कार्य में अध्यापकों का सहयोग आवश्यक होता है। इस प्रकार मेघनाद के लिए विज्ञान एक पूजा का विषय बन गया। सुयोग्य छात्र और निष्ठावान अध्यापकों के सहयोग से जहां प्रेसीडेंसी कालेज का नाम दूर-दूर तक फैल रहा था, वहां यह स्थान देश में विज्ञान प्रतिभा के विकास में भी योग दे रहा था।

मेघनाद ने 1913 में बी० एस-सी० आनर्स परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। उन्होंने बी० एस-सी० में भी प्रथम श्रेणी प्राप्त की। और उसी कालेज में सन् 1915 में गणित में ही एम० एस-सी० परीक्षा पूरे विश्वविद्यालय में दूसरा स्थान प्राप्त करके पास की। प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले सत्येन्द्र बोस भी आगे चलकर महान् वैज्ञानिक सिद्ध हुए। आगे चलकर गणित के ये प्रतिभाशाली छात्र महान् भौतिकविद सिद्ध हुए।

जैसा कि आप पहले पढ़ चुके हैं, मेघनाद के घर की आर्थिक

स्थिति बहुत बढ़िया न थी। इसलिए पढ़ाई समाप्त करने के बाद मेघनाद के सामने कोई अच्छी-सी नौकरी खोज लेने की समस्या थी। घर के लोगों का भी यह विचार था कि इतना पढ़-लिख जाने पर मेघनाद को कोई अच्छी-सी नौकरी मिल जाएगी और घर का काम अच्छी तरह चल निकलेगा। मेघनाद भी यह बात अच्छी तरह समझते थे। इतने दिन पढ़ाई करने के बाद न तो खाली बैठना ठीक था और खाली बैठकर काम भी नहीं चल सकता था।

उन दिनों विभिन्न विभागों में कोई अच्छी नौकरी प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार प्रतियोगिता परीक्षाएं लिया करती थी। जो लोग इन परीक्षाओं में सफल हो जाते, उन्हें सरकार के आर्थिक अथवा पुलिस विभाग में नौकरी मिल जाया करती थी। मेघनाद का विचार वित्त विभाग में नौकरी प्राप्त करने का था। इसीलिए उन्होंने प्रतियोगिता परीक्षा में बैठना चाहा, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने नौकरी तो क्या, इस प्रतियोगिता परीक्षा में भाग लेने की आज्ञा भी नहीं दी।

यह कितनी विडम्बना थी कि इतने मेधावी छात्र को प्रतियोगिता परीक्षा में न बैठने दिया जाय। राष्ट्रीय विचारों के बदले उन्हें नौकरी तक से वंचित रहना पड़ा। आपको याद होगा कि मिडिल स्कूल में जब मेघनाद पढ़ते थे, और अभी बिलकुल बालक ही थे, उस समय बंगाल के टुकड़े कर देने के निर्णय का जनता ने भयंकर विरोध किया था। स्कूलों-कालेजों के विद्यार्थियों ने भी हड़तालें की थीं। मेघनाद का यह अपराध था कि उन्होंने उस समय स्कूल को हड़ताल में भाग लिया था। इसीलिए उन्हें स्कूल से निकाल भी दिया गया था और उनकी छात्रवृत्ति भी बन्द कर दी गई थी। सीधे राजनीति में भाग न लेने पर भी केवल देशभक्त व्यक्तियों से सम्बन्ध रखने के कारण ही उन्हें इस बात से वंचित रहना पड़ा था।

बंग-भंग आन्दोलन के बाद स्वतन्त्रता संग्राम ने और भी जोर

पकड़ लिया था। उस समय तक आन्दोलन दो धाराओं में बंट चुका था। एक ओर तो वह व्यक्ति थे, जो आन्दोलन को अहिंसक और शान्तिपूर्ण रखना चाहते थे और भारत की अधिकांश जनता को इसके लिए तैयार भी कर रहे थे। इस आन्दोलन की दूसरी धारा में वे व्यक्ति आते हैं, जिन्हें क्रान्तिकारी कहा जाता है। इस धारा में प्रायः सभी युवक अथवा कालेजों के छात्र भी थे। इन सबका विश्वास था कि अहिंसा से न जाने कब फल की प्राप्ति हो। वे चाहते थे कि अंग्रेज़ों को यहां से मार कर भगा दिया जाय।

उस समय के क्रान्तिकारी व्यक्ति जतीन्द्रनाथ और ढाका के पुलिन दास इनके होस्टल में आते-जाते थे। डा० राजेन्द्र प्रसाद भी किसी समय इसी कालेज के छात्र रह चुके थे। सुभाष चन्द्र बोस उस समय पढ़ रहे थे, परन्तु अन्य क्रान्तिकारी व्यक्तियों से इन छात्रों का सम्बन्ध बना हुआ था। भले ही मेघनाद राजनीतिक कार्यों में कभी भी नहीं उलझे, तो भी भारत सरकार उन्हें शत्रु ही मानती थी। भारतीयों को ऊंची नौकरी देते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता था कि नौकरियां केवल ब्रिटिश सरकार के पिट्ठू लोगों को ही दी जाएं। यही कारण था कि मेघनाद को प्रतियोगिता परीक्षा से भी वंचित रखा गया।



दृढ़-निश्चयी मेघनाद

कई बार मनुष्य के साथ जीवन में ऐसी घटनाएं घटती हैं जो या तो मनुष्य के जीवन को पलट देती हैं या नष्ट कर देती हैं ।

मेघनाद नौकरी इसलिए करना चाहते थे कि उनके घर की आर्थिक अवस्था अच्छी न थी। और वह यह भी चाहते थे कि जिस प्रकार उनके बड़े भाई ने पढ़ाई आदि के खर्च में सहायता करके उनका साथ दिया था उसी प्रकार वह भी अपने छोटे भाई के लिए कुछ कर पाते ।

मनुष्य स्वयं तो प्रयत्न करता ही है परन्तु कुछ अदृश्य शक्तियां भी उसकी सहायक होती हैं। सम्भवतः मेघनाद को प्रतियोगिता परीक्षा के बाद सरकारी वित्त विभाग में कोई ऊंची-सी नौकरी मिल जाती तो उनके जीवन की धारा ही बदल जाती। यहां फिर वही कहावत याद आती है कि मनुष्य सोचता कुछ है परन्तु होता कुछ और हो है। मेघनाद का रुचिकर विषय विज्ञान था और हो सकता था कि बड़ी नौकरी और घर की

आर्थिक परिस्थिति के कारण मेघनाद विज्ञान के प्रति विमुख हो जाते। इसलिए अदृश्य रूप से उन्हें प्रतियोगिता परीक्षा में न बैठने देकर ब्रिटिश सरकार ने परोक्ष रूप से उनका और भारतीय जनता का उपकार ही किया।

नौकरी नहीं मिलेगी तो क्या व्यक्ति खाली बैठे रहेंगे?

नहीं, मेघनाद ने किसी प्रकार की चिंता न करते हुए ट्यूशनें करना आरम्भ कर दिया।

प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण एम० एस-सी० युवक सारे दिन साइकिल पर यहां से वहां और वहां से यहां ट्यूशन पढ़ाने जाता और इस प्रकार जो प्राप्ति होती उससे अपने छोटे भाई की शिक्षा का भार चलाता और घर के खर्च में भी कुछ हाथ बंटाने का प्रयत्न करता।

पन्द्रह-बीस मील रोज साइकिल पर घूम फिर कर ट्यूशन करना उस समय उनके प्रति दिन के जीवन की घटना बन गई।

परन्तु मेघनाद के सामने प्रश्न केवल पेट भरने का नहीं था। वह साथ-साथ विज्ञान की सेवा के लिए समर्पित युवक था। उसने विज्ञान के लिए अपना जीवन समर्पित कर देने का निश्चय किया।

ट्यूशन आदि के बाद जो समय मिलता वह उनके लिए खाट पर पड़े रह कर बिताना कठिन था। उन्होंने गणित और भौतिकी में अनुसंधान करने का फैसला किया। इस प्रकार इस साहसी युवक ने एक वर्ष बहुत ही आर्थिक तंगी में गुजारा। इतना ही नहीं, उन्हें भारी शारीरिक कष्ट भी इसलिए उठाना पड़ा कि कोई टयूशन कलकत्ता के श्यामबाजार में थी तो दूसरी भवानीपुर में।

उन दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालय में आशुतोष मुखर्जी नाम के एक सुयोग्य उपकुलपति हुआ करते थे। वह मनुष्यों को परखने और उनकी प्रतिभा को समझने में बहुत ही चतुर व्यक्ति थे। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों को लाकर इकट्ठा किया था। उस समय कुछ महत्वपूर्ण वैज्ञानिक भी वहां काम कर रहे थे। इनमें जगदीश चन्द्र बसु,

आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय और टी० एस० मलिक आदि बहुत ही सुप्रसिद्ध व्यक्ति थे। सुबोधचन्द्र राय रसायन विज्ञान के अध्यापक थे। जगदीश चन्द्र बसु भौतिक विज्ञान, श्री डी० एन० मलिक गणित के अध्यापक थे। ये शिक्षित होने के साथ-साथ देशभक्त भी थे और अपने विषय के प्रकाण्ड विद्वान भी। इन विद्वानों और वैज्ञानिकों के घनिष्ट सम्पर्क के कारण मेघनाद की रुचि दिनोंदिन विज्ञान के प्रति गहरी होती गई। वह सारे दिन ट्यूशनें करने के पश्चात् सायंकाल से देर रात्रि तक विज्ञान के अध्ययन में लगे रहते।

यह स्थिति इस प्रकार की थी कि जब सोने को तपाकर कुन्दन बनाया जाता है। उसी प्रकार मेघनाद के जीवन में अपने माता-पिता और भाई-बहन को दिन-भर की सेवा के बाद विज्ञान के प्रति समर्पित जीवन बिताते हुए जीवन को कुन्दन बना रहे थे।

आशुतोष मुखर्जी ने 1916 में श्री मेघनाद साहा से सम्पर्क स्थापित किया और गणित विभाग में प्राध्यापक का पद स्वीकार करने के लिए उन्हें कहा।

श्री आशुतोष मुखर्जी उन दिनों कलकत्ता के ही नहीं देशभर के प्रसिद्ध शिक्षाविद थे। उनमें व्यक्ति को परखने की विशेष प्रतिभा थी। उन्होंने अपने-अपने विषय के श्रेष्ठ विद्वानों को खोज-खोज कर कलकत्ता विश्वविद्यालय में सम्मान के पद दिए थे।

जिस समय मेघनाद साहा कलकत्ता विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक नियुक्त हुए, वहां गणित विभाग के अध्यक्ष श्री गणेश प्रसाद थे। मेघनाद साहा की उनसे पटरी न बैठी इसलिए उन्हें भौतिकी विभाग में स्थानान्तरित कर दिया गया। यह घटना उनके जीवन के लिए बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई। यह मेघनाद साहा को एम० ए० के छात्रों को भौतिकी विषय पढ़ाना पड़ता था। उन्होंने स्वयं बी०ए० तक भौतिकी पढ़ी थी और उसमें बहुत कम नम्बर लेकर ही वह पास हुए थे। ऐसी स्थिति में एम० ए० के छात्रों को भौतिकी पढ़ाना कोई हंसी खेल न था।

पर दृढ़-निश्चयी व्यक्तियों के लिए कोई भी कार्य कठिन नहीं होता। कठिन भले ही हो परन्तु असम्भव तो बिल्कुल नहीं। वैसे भौतिकी और गणित में भी आधार तत्व एक ही प्रकार के है। उन दिनों मेघनाद साहा को बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता था। इसके दो कारण थे। एक तो कलकत्ता विश्वविद्यालय का नाम—दूसरे अपनी योग्यता प्रकट करने का सुअवसर। इसलिए वह कक्षा में जाने से पूर्व अपने विषय का खूब चिन्तन मनन करते और उसके सम्बन्ध में पूरी तैयारी करते।

मेघनाद साहा ने एम० एस-सी० गणित में की थी। नियमित भौतिकी का अध्ययन नहीं किया था परन्तु उन्होंने अपने परिश्रम और निष्ठा के द्वारा भौतिकी विषय पर इतना अधिकार कर लिया कि वह कुछ ही दिनों में विश्वविद्यालय भर में सुयोग्य शिक्षक माने जाने लगे। वे अपना विषय केवल छात्रों को पढ़ाते ही नहीं थे, प्रयोगशाला में छात्रों से प्रयोग भी करवाते थे और अनुसंधान कार्य में उनका मार्ग-दर्शन भी करते थे।

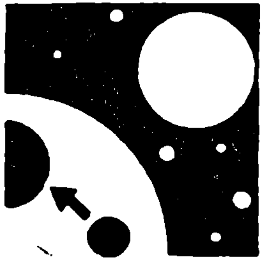
हम पहले ही बता चुके हैं कि उन दिनों विज्ञान के श्रेष्ठ ग्रन्थ जर्मन भाषा में हुआ करते थे और अच्छे वैज्ञानिक के लिए जर्मन भाषा सीखना बहुत आवश्यक-सा होता था क्योंकि उसके बिना वह अपने विषय का सम्पूर्ण और श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त न कर सकता था।

मेघनाद साहा ने जर्मन भाषा का अच्छा अध्ययन किया था। इसका उन्हें एक और लाभ प्राप्त हुआ।

इन्हीं दिनों आइन्स्टीन के सापेक्षिकता सिद्धान्त के सम्बन्ध में परिचर्चा आरम्भ हुई। उनके सिद्धान्त के सम्बन्ध में अंग्रेज़ी भाषा में विशेष साहित्य प्रकाशित न हो पाया था, जो भी विवरण प्राप्त था वह जर्मन भाषा में था। जर्मन भाषा न जानने के कारण संसार के अनेक महान् वैज्ञानिक आइन्स्टीन के सिद्धान्त से अपरिचित थे, परन्तु जर्मन भाषा का ज्ञान होने के कारण मेघनाद इससे पूर्ण रूप से परिचित हो चुके थे। उन दिनों समा-

चार पत्रों में सापेक्षिकता के सिद्धान्त के सम्बन्ध में बहुत चर्चा थी। परन्तु उन सिद्धान्तों के सम्बन्ध में समाचारपत्र भी कोई विवरण न दे पा रहे थे।

कलकत्ता से 'स्टेट्समैन' दैनिक निकलता था। स्टेट्समैन के सम्पादकों ने खोजते-खोजते कलकत्ता विश्वविद्यालय में मेघनाद साहा को खोज निकाला और उनसे प्रार्थना की कि वे आइन्स्टीन के इस सिद्धान्त के सम्बन्ध में प्रकाश डालें। 'स्टेट्समैन' का सम्पादकीय विभाग अपने पाठकों के लिए आइन्स्टीन के सिद्धान्त का विवरण देने की इच्छा रखता था। मेघनाद साहा और उनके सहयोगी सत्येन्द्रनाथ बसु ने आइन्स्टीन के सापेक्षिकता सिद्धान्त का जर्मन भाषा से अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने इसका प्रकाशन किया, और देखते ही देखते मेघनाद साहा का नाम वैज्ञानिकों और सामान्य पाठकों के लिए सुपरिचित बन गया।



तारा भौतिकी का अध्ययन

विज्ञान और प्रयोगशाला का चोली दामन का साथ है। वनाद साहा कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिकी पढ़ाते थे। ्न्तु कलकत्ता विश्वविद्यालय को भी इस बात के लिए अनेक ठिनाइयों का सामना करना पड़ा था कि किस प्रकार वहां की ोगशाला में अधिकाधिक साज-सामान जुटाया जा सके। वहां ज्ञान का अध्ययन आरम्भ हुए कुछ ही वर्ष हुए थे। वहां के ्य वैज्ञानिक अध्यापकों को भी इस प्रकार की कठिनाइयां ती थीं परन्तु उन्होंने जैसे-तैसे अपने घर पर छोटी-छोटी ोगशालाओं का प्रबन्ध कर लिया था। जगदीश चन्द्र बसु आदि ाने कार्य के प्रति इतने समर्पित थे कि वे कालेज से आकर लेज अथवा अपने घर की प्रयोगशाला में देर रात तक कार्य ते रहते थे। मेघनाद साहा के लिए इस प्रकार की सुविधाएं प्त न हो सकी थीं। परन्तु उन्होंने हिम्मत न हारी।

वे जो भी उपकरण मिलते उनसे अनुसंधान करते और

अनुसंधान के परिणामों को कलमबद्ध करते जाते। धीरे-धीरे वह समय आया जब उनके विज्ञान सम्बन्धी निबन्ध ब्रिटेन और अमरीका की भौतिक विज्ञान सम्बन्धी प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे।

स्वनिर्मित यंत्र

मेघनाद साहा ने आइन्स्टीन के सापेक्षिकता के सिद्धान्त का खूब अच्छी तरह अध्ययन किया था। उस सिद्धान्त का मुख्य आधार है कि प्रकाश भारहीन नहीं होता। यदि प्रकाश का भार मान लिया जाता है तो सूर्य के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में प्रवेश करते समय प्रकाश का वह भार सूर्य की ओर आकृष्ट होगा अथवा सूर्य उसे थोड़ी-बहुत मात्रा में अपनी ओर खींचेगा।

आकाश में जो छोटे-बड़े तारे दिखाई देते हैं वे भी प्रकाश-पुंज है। जब उन तारों का प्रकाश सूर्य के निकट से चलता है तो गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण वह सूर्य की ओर आकृष्ट होकर मुड़ता है।

आइन्स्टीन का यह सिद्धान्त प्रतिपादित तो हो चुका था परन्तु उसे परीक्षणों द्वारा सिद्ध करना काफी कठिन था क्योंकि सूर्य के चकाचौंध कर देने वाले प्रकाश में तारों को देखना और उनकी स्थिति का पता लगाना अथवा उनके चित्र लेना कोई सरल काम न था। यह कार्य केवल सम्पूर्ण सूर्यग्रहण के समय ही किया जा सकता था। उसी समय दूरबीन की सहायता से तारों आदि की सही स्थिति का पता लगाया जा सकता है।

29 मई, 1919।

सूर्य ग्रहण का दिन।

अफ्रीका और ब्राजील में दिखाई देने वाला सम्पूर्ण सूर्य ग्रहण।

संसार-भर के वैज्ञानिकों ने इस समय सूर्य ग्रहण सम्बन्धी परीक्षणों से आइन्स्टीन के सिद्धान्तों को सही पाया।

आइन्स्टीन ने अपने सिद्धान्त की स्थापना 1905 में की थी। 1900 से लेकर वैज्ञानिक सूर्य के प्रकाश के भार को मापने का प्रयत्न करते रहे थे। परन्तु इसमें किसी को सफलता न मिल पाई थी।

मेघनाद साहा ने सूर्य प्रकाश के भार या दबाव को नापने के लिए एक यंत्र बनाया। उस यंत्र का परीक्षण करके प्रकाश के भार को माप कर दिखा दिया। इस सम्बन्ध में उनके जो लेख आदि प्रकाशित हुए उनके कारण मेघनाद साहा संसार के अग्रणी वैज्ञानिकों की श्रेणी में आ गए।

वास्तव में यह मेघनाद साहा की महान उपलब्धि थी कि जिस कार्य को पिछले 18 वर्षों में विश्व भर के वज्ञानिक न कर पाए थे, मेघनाद साहा ने उसे कर दिखाया।

मेघनाद साहा की उम्र उस समय केवल 25 वर्ष की थी।

यहां हम एक बात बता देना चाहते हैं कि देश की स्वतंत्रता के अनेक वर्षों के पश्चात भी अनेक भारतीयों के विचार में यह बात पूरी तरह नहीं उतरती कि भारतीय लोग भी विज्ञान के क्षेत्र में ब्रिटेन अथवा अमरीका की सहायता के बिना बहुत उन्नति कर सकते हैं। कुछ लोगों का आज भी यह विचार है कि ब्रिटिश सरकार के आने से पूर्व भारतीय लोग विभिन्न वैज्ञानिक विषयों के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते थे। ऐसा सोचना मूर्खता की पराकाष्ठा ही नहीं, अपने आप को अज्ञान में रखने की भारी गलतफहमी भी है।

भारत ने अनेक विषयों में संसार को अपूर्व ज्ञान दिया है और प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक सिद्धांतों की सत्यता पश्चिम के वैज्ञानिकों ने स्वयं परीक्षणों द्वारा सिद्ध करके देखी हैं।

कलकत्ता विश्वविद्यालय ने मेघनाद साहा को उनकी इस खोज पर डॉक्टर आफ साइंस की उपाधि से सम्मानित किया।

विज्ञान की अनेक शाखाएं तथा उप-शाखाएं हैं। प्रत्येक वैज्ञानिक अपने किसी भी शोध सम्बन्धी कार्य के लिए विज्ञान की

एक शाखा को अपना प्रमुख विषय बनाता है। यदि वह उससे संबंधित सम्पूर्ण क्षेत्र को ही अपने अध्ययन का विषय बनाए रखे तो उसके लिए किसी एक क्षेत्र की सूक्ष्म विवेचना करना कठिन होता है। इसलिए उसके लिए आवश्यक होता है कि वह अपने अध्ययन का विषय विज्ञान के किसो एक अंग को बनाए।

आकाश में अनेक तारामण्डल और नक्षत्र दिखाई देते हैं। तारा-मण्डल का अध्ययन तारा भौतिकी के अधीन होता हैं। तारा भौतिकी का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक के लिए आवश्यक है कि वह तारों की दूरी, उनके निर्माण के सम्बन्ध में ज्ञान, उनकी गति, उनका स्थान तथा उनके प्रकाश का पूर्ण विवरण प्रस्तुत करे।

रात्रि के समय आप अपनी चारपाई पर लेट कर आकाश की ओर देखते हैं तो आपको असंख्य तारे दिखाई देते हैं। किसी तारे में बहुत अधिक चमक है और किसी में कम। भौतिकविदों का कहना है कि कुछ तारे सूर्य से भी बड़े हैं, परन्तु ये सूर्य से भी बहुत ही छोटे दिखाई देते हैं। इसका कारण यही है कि वे सूर्य से बहुत अधिक दूरी पर स्थित हैं।

सूर्य अथवा हमारी पृथ्वी से ये सितारे कितनी दूर हैं इस दूरी को नापने के लिए हम उस समय को नापते हैं जितने समय में विभिन्न तारों अथवा सूर्य से प्रकाश हमारी पृथ्वी तक पहुंचता है।

इस प्रकाश को पृथ्वी तक पहुंचने में जितना समय अथवा वर्ष लगते है उसे 'प्रकाश वर्ष' कहा जाता है। आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि आकाश में कुछ तारे ऐसे भी हैं जिनका प्रकाश धरती तक पहुंचने में हज़ारों वर्ष लग जाते हैं। इन प्रकाश वर्षों को यदि संख्या द्वारा प्रकट किया जाय तो बहुत बड़ी संख्या बन जाती है। इसके लिए एक दूसरा तरीका निकाला गया है। यह प्रकाश जितने वर्षों में पृथ्वी तक पहुंचता है उसे प्रकाश वर्ष के रूप में आंका जाने लगा।

तारा भौतिकी का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक यह पता लगाने का यत्न करते हैं कि विभिन्न तारे किस पदार्थ से बने हैं विभिन्न तारों और नक्षत्रों में गर्मी और प्रकाश में इतना अन्तर क्यों है। यह आश्चर्य का विषय है कि जिन नक्षत्रों का प्रकाश हज़ारों वर्षों में हमारी पृथ्वी तक पहुंचता है उनके सम्बन्ध में वैज्ञानिक लोग ये सब बातें कैसे जान लेते हैं।

यह जानकारी प्रिज्म द्वारा प्राप्त होती है। प्रिज्म में से प्रकाश जब गुजरता है तो प्रत्येक रंग की किरणें अपने अनुपात के अनुरूप मुड़ जाती हैं। इससे सारे रंग पृथक्-पृथक् दिखाई देने लगते हैं।

तारे किस तत्व से अथवा कौन-सी गैसों से मिलकर बने हैं इसका पता वैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार की गैसों को जलाकर लगाया। जलाने से जिस रंग का प्रकाश उस गैस से निकलता है उसी के द्वारा नक्षत्रों की रचना वाले तत्वों का पता चलता है।

नक्षत्रों के प्रकाश के विश्लेषण और उनको मापने से जो परिणाम प्राप्त होते थे वे प्रायः पूर्व निश्चित परिणामों से भिन्न होते थे। मेघनाद साहा ने इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया। उन्होंने इस सम्बन्ध में जितने भी शोध निबन्ध तब तक प्राप्त थे, उनका अध्ययन किया। इस सम्बन्ध में जर्मन भाषा में भी जो साहित्य उपलब्ध था, मेघनाद साहा ने उसे खोजकर पढ़ा। इस अध्ययन से उन्होंने यह निश्चय किया कि सूर्य के अत्यधिक तापक्रम तथा थोड़ें से दबाव पर सूर्य के परमाणु आयोनाइज्ड हो जाते हैं। अर्थात् उनके और टुकड़े हो जाते हैं। ऊंचे तापमान के कारण दबाव पड़ने से परमाणु खण्डित होने के कारण इनका संतुलन समाप्त हो जाता है। डा० साहा ने यह पता लगाने की विधि खोज निकाली थी कि जिस नक्षत्र का अध्ययन किया जा रहा है उसके परमाणु अथवा रचना तत्व विखण्डन की किस स्थिति में हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में तापांश का पता लगाने के लिए गणित का सहारा लिया और यह भी पता लगाया कि वह प्रकाश किस रंग का होगा।

वैज्ञानिक लोग उन दिनों जो खोज करते थे उसके सम्बन्ध में संसार भर के वैज्ञानिकों को जानकारी देने के लिए यह आवश्यक था कि उसका विवरण ब्रिटेन या अमरीका की किसी विशिष्ट पत्रिका में प्रकाशित करवाया जाय। मेघनाद साहा ने अपने शोध का विवरण 1920 में लंदन की 'फिलासाफिकल मैगजीन' में प्रकाशित करवाया। उनकी इस खोज से तारा भौतिकी सम्बन्धी अनेक समस्याओं का समाधान हुआ और बहुत-सी जानकारी प्राप्त हुई।

डा० साहा अब तक अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक का स्थान प्राप्त कर चुके थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय का विज्ञान विभाग ही क्या, भारत की किसी अन्य प्रयोगशाला में भी इस विषय की जानकारी प्राप्त करने के लिए अथवा अधिक शोध करने के लिए प्रयोगशाला में उपकरणों का अभाव था। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने डा० साहा की खोज का महत्व समझा और इस बात का प्रयत्न किया कि डा० साहा को अपने कार्य के लिए और अधिक सुविधाएं मुहैया करवायी जाएं। इसके लिए आवश्यक था कि वह यूरोप के वैज्ञानिकों के साथ मिलकर वहां की प्रयोगशालाओं में कार्य करें। अंत में 1919 में उन्हें प्रेमचन्द रायचन्द शोध छात्र-वृति प्राप्त हुई और यात्रा के लिए गुरुप्रसन्न घोष फेलोशिप दी गई।

मेघनाद साहा के प्रयत्नों से अब तक उनके घर की आर्थिक स्थिति काफी सुधर चुकी थी। इतना ही नहीं, वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान भी प्राप्त कर चुके थे। 16 जून, 1918 ई० को डा० साहा ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। उनका विवाह श्रीमती राधा रानी से हुआ। अनुकूल जीवन साथी मिलने पर जिस प्रकार व्यक्ति की प्रतिभा का विकास होता है और कार्य शक्ति बढ़ती है, डा० साहा को भी अनुरूप पत्नी प्राप्त होने से स्वत: उनके विकास के मार्ग खुलते गए।



विदेश प्रस्थान

सन् 1919 के सितम्बर मास में डा० साहा कलकत्ता से छात्र-वृत्ति लेकर अपने शोध कार्य को और आगे बढ़ाने के लिए लंदन पहुंचे। परन्तु लंदन और कलकत्ता के खर्चे में ज़मीन आसमान का अन्तर था। उन्हें शीघ्र ही यह अनुभव हो गया कि कलकत्ता विश्वविद्यालय से मिलने वाली छात्रवृत्ति से उनका पूरा खर्च न चल पाएगा।

उन दिनों अनेक मेधावी भारतीय विद्यार्थी इंग्लैंड पढ़ने जाया करते थे। उन दिनों डा० साहा के एक पुराने सहपाठी स्नेहमय दत्त डॉक्टर आफ साइंस की उपाधि के लिए शोध कार्य कर रहे थे। जब डा० साहा ने अपनी कठिनाई का ज़िक्र उनसे किया तो स्नेहमय दत्त ने उन्हें सुझाव दिया कि वह तारा भौतिकी के सुप्रसिद्ध विद्वान डा० फाउलर से मिलें।

डा० फाउलर एक सज्जन और विद्वान व्यक्ति थे। डा० साहा के शोध कार्य का संक्षिप्त विवरण जब उन्होंने सुना तो उन्हें बड़ी

प्रसन्नता हुई कि एक युवक भारतीय वैज्ञानिक ने अपनी प्रतिभा और निष्ठा के बल पर इतना कार्य किया। उनके कार्य से प्रभावित होकर डा० फाउलर ने उन्हें अपनी प्रयोगशाला में शोध-सहायक नियुक्त करने का निश्चय कर लिया। डा० साहा डा० फाउलर के रिसर्च असिस्टेंट नियुक्त हुए।

डा० साहा ने यहां स्पैक्ट्रास्कोप के सम्बन्ध में अध्ययन किया। डा० फाउलर इस विषय के विशेषज्ञ थे, उन्होंने इस सम्बन्ध में उनकी पूरी सहायता की। उन्होंने इस सम्बन्ध में अब तक जो विवरण तैयार किया था, अपने विषय का एक अच्छा सहायक मिलने पर उसका संशोधन और परीक्षण प्रारम्भ किया।

कोई भी वैज्ञानिक जिस किसी भी सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, उसकी सम्पूर्ण व्याख्या करने में और उसकी सत्यता सिद्ध करने में कई बार अनेक वर्ष लग जाते हैं। डा० साहा ने तापीय आयोनाइजेशन का जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया था उसके द्वारा अभी भी सूर्य तथा तारों के प्रकाश की व्याख्या पूर्णतया सम्भव न थी। आवश्यकता इस बात की थी कि प्रयोगशाला में इस सिद्धान्त की वास्तविकता अथवा सत्यता को प्रतिपादित किया जाए। उसके लिए ऐसे उपकरण की आवश्यकता थी कि जितना सूर्य में उच्च तापमान और दबाव होता है, वैसा उस उपकरण द्वारा भी ताप उत्पन्न करना सम्भव हो। परन्तु ऐसा यन्त्र अभी तक उपलब्ध न हो पाया था। लंदन के इम्पीरियल साइंस कालेज में भी यह उपकरण नहीं था।

डा० फाउलर ने कैम्ब्रिज की केवेंडिश लेबोरेटरी में पता लगाया कि सम्भवतः ऐसा यन्त्र वहां उपलब्ध हो। परन्तु उस लेबोरेटरी के अध्यक्ष डा० जे० जे० थामस से मिलने पर पता चला कि वहां भी वह उपकरण नहीं था। डा० थामस ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक थे। उन्होंने डा० साहा के विचारों को सुना तो वह उनसे बहुत प्रभावित हुए। जब वह लौटकर डा० फाउलर के पास आए

और उन्होंने अपने सारे प्रयत्नों का विवरण उन्हें दिया तो डा० फाउलर ने उन्हें आश्वासन दिया कि वह इस सम्बन्ध में उनकी पूरी सहायता करेंगे।

डा० फाउलर साहा के प्रयत्नों से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने देखा कि एक भारतीय युवक वैज्ञानिक उपकरण के अभाव में निराश न हो इसलिए उन्होंने जर्मनी के एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० नारनेस्ट को एक पत्र लिखा। उनका दृढ़ विश्वास था कि उनके पास वह उपकरण होना चाहिए।

इसी बीच एक और दुर्घटना घटी।

डा० मैक्लेनन नामक वैज्ञानिक ने डा० साहा के तापीय आयोनाइजेशन सिद्धान्त की सत्यता प्रतिपादित करने के लिए प्रयोग आरम्भ किए। उन्होंने अपना प्रयोग पारद वाष्प द्वारा किया। डा० साहा ने जिस प्रकार के वर्ण प्राप्त होने की भविष्य-वाणी की थी, मैक्लेनन के प्रयोग से वह सत्य सिद्ध नहीं हुई। उससे मैक्लेनन ने यह परिणाम निकाला कि डा० साहा का सिद्धान्त ठीक नहीं है।

डा० साहा को मैक्लेनन के प्रयोग के सम्बन्ध में जब ज्ञात हुआ तो उन्होंने कहा कि इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करना इतना सरल कार्य नहीं क्योंकि पारे को प्रयोगशाला में आयो-नाइज करना यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। इसके लिए अत्यन्त उच्च तापमान की आवश्यकता होती है और इतना अधिक तापमान प्रयोगशाला में उत्पन्न करना सम्भव नहीं।

उन्होंने बताया कि पारद की अपेक्षा सोडियम और पोटा-शियम को प्रयोगशाला के तापमान से आयोनाइज करना सरल और सम्भव है। रूबीडियम और कैसियम पदार्थ भी आयोनाइज किए जा सकते हैं। परन्तु कठिनाई यह है कि सूर्य के समान उच्च तापमान में यह इतने अधिक आयोनाइज हो जाते हैं कि उनके प्रकाश का स्वरूप ही पहचान में नहीं आता। डा० साहा ने यह

भी बताया कि वैसा प्रकाश सूर्य के उन धब्बों से प्राप्त किया जा सकता है जहां इतनी अधिक गर्मी नहीं होती।

और तभी डा० साहा को एक प्रसन्नतासूचक समाचार मिला।

अमरीका के हैनरी नोरिस नामक एक प्रोफेसर ने डा० साहा को सूचित किया कि उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले हैं वे सत्य सिद्ध हुए हैं। सूर्य के कलंकों के प्रकाश का स्पैक्ट्रा द्वारा अध्ययन किए जाने पर बिल्कुल वही परिणाम प्राप्त हुए हैं जिनके सम्बन्ध में डा० साहा ने बहुत पहले भविष्यवाणी की थी।

उन्हीं दिनों प्रथम विश्व युद्ध समाप्त हुआ था। डा० साहा जर्मनी के प्रोफेसर नारनेस्ट की प्रयोगशाला में कार्य करने के लिए जर्मनी गए थे। जर्मनी की ब्रिटेन से पराजय हुई थी। इस पराजय के कारण जर्मन लोगों में ब्रिटेन के लोगों के प्रति गहरी घृणा के भाव थे। भारत चूंकि ब्रिटेन के अधीन था, और भारतीय सेनाओं ने ब्रिटेन की सहायता की थी इसलिए भारतीयों को भी जर्मन लोग द्वेष की भावना से देखते थे।

उस समय स्थिति ऐसी थी कि स्वयं डा० साहा को ऐसा प्रतीत होने लगा कि सम्भवतः उन्हें प्रयोगशाला में घुसने ही न दिया जाय। परन्तु प्रोफेसर नारनेस बहुत सज्जन व्यक्ति थे और डा० साहा के सम्बन्ध में पहले जानकारी प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने अपनी प्रयोगशाला में उन्हें कार्य करने की अनुमति दे दी।

जैसा कि आप जानते हैं, डा० साहा जर्मन भाषा से पूर्ण परिचित थे, इसलिए वहां जर्मन भाषा का ज्ञान उनके लिए बहुत सहायक सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त अन्य जर्मन विद्वानों और शोध करने वाले छात्रों ने भी उन्हें पूरा-पूरा सहयोग दिया जिससे वे अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिए पूर्ण तन्मयता से कार्य कर सकें।

यह समय डा० साहा के वैज्ञानिक कार्यों के लिए बहुत ही उपयुक्त सिद्ध हुआ तथा उनके प्रयोगों और शोध कार्यों में बहुत प्रगति हुई।



स्वदेश वापसी

निश्चय ही डा० साहा ने इंग्लैंड तथा जर्मनी में अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए बहुत अच्छा कार्य किया। संभवतः वह कुछ दिन और अभी वहीं कार्य करते, परन्तु कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति सर आशुतोष मुकर्जी ने तार देकर उन्हें स्वदेश वापस बुला लिया।

कारण यह था कि कलकत्ता विश्वविद्यालय के विज्ञान विभाग में प्रोफेसर का एक पद रिक्त हुआ था। सर आशुतोष मुखर्जी सदैव योग्यतम व्यक्तियों की खोज में रहते थे और उनका प्रयत्न रहता था कि जैसे भी हो वे कलकत्ता विश्वविद्यालय में कार्य करें।

पंजाब में एक खेड़ा नामक स्टेट थी। वहां के श्री गुरु प्रसाद ने इस पीठ की स्थापना के लिए दान दिया था। डा० साहा को शोध कार्य संचालन और भौतिकी के सम्बन्ध में और अधिक विवेचन और अनुसंधान के लिए यह पद दिया जा रहा था। श्री

गुरु प्रसाद ने प्रोफेसर पीठ की स्थापना के लिए जो दान दिया था वह पर्याप्त न था परन्तु सर आशुतोष ने उस विश्वविद्यालय से सम्बद्ध धनी व्यक्तियों से मिलकर किसी न किसी प्रकार विघ्न बाधाओं को दूर करने का प्रयत्न किया।

विश्वविद्यालय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ब्रिटिश सरकार से आर्थिक सहायता नहीं मिलती थी। श्री आशुतोष मुखर्जी अपने सम्पर्क द्वारा धनी व्यक्तियों से सहयोग प्राप्त करके इस कमी को पूरा करते थे। धन की कमी के कारण विश्वविद्यालय में पूरे उपकरण भी न जुटाए जा सकते थे। विज्ञान विषय की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का भी अभाव था। शोध कार्य में भाग लेने वाले छात्रों के लिए भी यह आवश्यक था कि सभी देशों में हुई अब तक की विज्ञान की प्रगति से परिचित रहें और विभिन्न क्षेत्रों में हुए अधूरे कार्यों को पूरा करने का प्रयत्न करें।

इतने पर भी सर आशुतोष मुखर्जी ने सोचा कि डा० साहा शोध कार्य करने में समर्थ रहेंगे। परन्तु जैसा कि अभी बताया गया है, धन की कमी के कारण डा० साहा का शोध कार्य बड़ी मुश्किल से ही चल पाता था। उनके कार्य में सहायता करने वाला भी कोई नहीं था। उपकरणों और पुस्तकालय में विज्ञान सम्बन्धी महत्वपूर्ण पुस्तकों की भी कमी थी। समय बीतने के साथ-साथ डा० साहा यह अनुभव करने लगे कि उनके समय का कोई सदुपयोग नहीं हो रहा। ऐसी स्थिति में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय छोड़ने का निर्णय किया।

अनेक भारतीय विश्वविद्यालय डा० साहा को अपने यहां बुलाना चाहते थे। उन्हें मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रोफेसर और कोडइकनाल स्थित वेधशाला में असिस्टेंट डायरेक्टर के पद पर नियुक्ति सम्बन्धी अनेक प्रस्ताव प्राप्त हुए। बहुत सोच-विचार के बाद उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रोफेसर का पद स्वीकार कर लिया।

डा० साहा जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त व्यक्ति के लिए किसी भी विश्वविद्यालय में स्थान प्राप्त करना कोई कठिन बात न थी। परन्तु डा० साहा जैसे व्यक्ति किसी उच्च पद को प्राप्त करने के ही इच्छुक न थे। उसके साथ वह अपनी विज्ञान साधना को भी पूरी निष्ठा से निभाना चाहते थे। यही कारण था कि उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय जैसा ख्याति प्राप्त संस्थान छोड़ने का निश्चय किया जहां सर आशुतोष जैसे स्वनामधन्य कुलपति थे।

वही ढाक के तीन पात

डा० साहा ने कलकत्ता विश्वविद्यालय को जिन अभावों और कठिनाइयों के कारण छोड़ा था, प्रयाग विश्वविद्यालय में भी उन्हीं कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। डा० साहा स्वयं जानते थे कि भारत एक निर्धन देश है और ब्रिटिश सरकार यहां विज्ञान की अधिक प्रगति के लिए विशेष रुचि भी नहीं लेती। इसके अतिरिक्त प्रयोगशालाओं के लिए आर्थिक सहायता भी नहीं दी जाती थी। यही कारण था कि प्रायः सभी विश्वविद्यालयों की प्रयोगशालाओं में उपकरणों के साथ-साथ विज्ञान सम्बन्धी अच्छी पुस्तकों का भी पूर्णतया अभाव था।

प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में नाम मात्र की पुस्तकें थीं। डा० साहा के साथ एक मनोरंजक घटना घटी।

विश्वविद्यालय के कोषाध्यक्ष कन्हैया लाल दुबे नाम के एक व्यक्ति थे जो अवकाश प्राप्त जज थे। डा० साहा ने कुछ नई पुस्तकें मंगाने के लिए उन्हें सूची दी और उनके लिए धन की स्वीकृति देने को कहा। इस पर श्री दुबे स्वयं उठ कर पुस्तकालय देखने के लिए आए।

वहां अलमारियों में लगी पुरानी पुस्तकों को देख कर डा० साहा से बोले, "क्या आपने इन सब पुस्तकों को पढ़ लिया है?"

डा० साहा ने उत्तर दिया: "कोई भी व्यक्ति इन पुस्तकों

को आरंभ से लेकर अंत तक न पढ़ेगा और न पढ़ सकता है।"

इस पर दुबे जी बोले, "तो फिर आपको नई पुस्तकों की क्या आवश्यकता है ? पहले इन्हें तो अच्छी तरह पढ़ लीजिए। जब इन पुस्तकों को पढ़ लें तब नई पुस्तकें मंगाने के लिए धन की मांग करें तो अच्छा होगा।"

यह थी प्रयाग विश्वविद्यालय की स्थिति और वहां के अधिकारियों की विज्ञान के सम्बन्ध में रुचि।

इतने पर भी इलाहाबाद के लोग तथा भारत के अन्य स्थानों के विद्वान भी यही समझते थे कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय भारत के श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में से है और वहां सभी प्रकार का आधुनिक साज-सामान भी है। वहां किसी प्रकार की किसी चीज की कोई कमी नहीं।

डा० साहा भी इसी कारण से इलाहाबाद विश्वविद्यालय में जाने का निश्चय कर पाये थे।

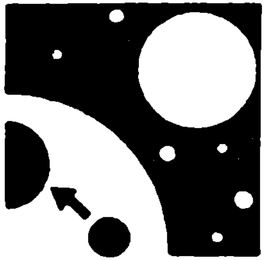
डा० साहा ने अपने तौर पर सरकार से धन की मांग की ताकि वे प्रयोगशाला के लिए कुछ उपकरण और विज्ञान सम्बन्धी नवीनतम पुस्तकें मंगा सकें। परन्तु यह झूठा प्रचार सरकार के कानों तक भी पहुंच चुका था इसलिए सरकार ने भी डा० साहा की मांग को अस्वीकार कर दिया।

डा० साहा के सामने बड़ी भयंकर समस्या थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय में तो डा० साहा केवल एम० एस-सी० कक्षाओं को ही पढ़ाते थे परन्तु इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एम०एस-सी० के साथ-साथ बी० एस-सी० की कक्षाओं को भी पढ़ाना पढ़ता था।

उनका सारा समय इस प्रकार कक्षाओं को पढ़ाने में ही बीत जाता था। न तो उन्हें अपने शोध कार्य को आगे बढ़ाने के लिए समय था और न सुविधा ही। वह छात्रों से भी कोई विशेष शोध कार्य न करवा सकते थे। उनके सामने केवल एक ही मार्ग था, कि वह गर्मी की छुट्टियों के दिनों में अपने शोध कार्य को कुछ आगे बढ़ा पायें क्योंकि उन दिनों पढ़ाने से अवकाश प्राप्त हो

जाता था। परन्तु इलाहाबाद की गर्मी इतनी प्रसिद्ध है और झुलसाने और कष्ट देने वाली है कि कोई काम इन गरमियों में करना असम्भव सा ही होता था।

"विघ्ने पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमाना :"— धुन के पक्के व्यक्ति झुलसा देने वाली गर्मी और अंगों को जकड़ देने वाली सर्दी की चिंता नहीं करते। बार-बार आने वाली कठिनाइयां उन्हें अपने मार्ग से विचलित नहीं कर पातीं। डा० साहा झुलसा देने वाली भयंकर गर्मी और शरीर की त्वचा को जला देने वाले लू के थपेड़ों की परवाह न करके प्रातःकाल से लेकर देर रात्रि तक प्रयोगशाला में अपना कार्य करते रहते।



गुणवान् सर्वत्र पूज्यते

ज्यों-ज्यों डा० साहा का आयोनाइजेशन सिद्धान्त विज्ञान जगत में परिचित होता गया त्यों-त्यों डा० साहा की ख्याति देश के साथ-साथ विदेशी में भी फैलती गई। 1927 में लंदन की रायल सोसायटी ने डा० साहा को अपना सदस्य बनाया। डा० साहा जिन दिनों इलाहाबाद विश्वविद्यालय में काम कर रहे थे, उस समय उत्तर प्रदेश को संयुक्त प्रान्त के नाम से पुकारा जाता था। सर मौरिस विलियम वहां के गवर्नर थे। सर विलियम विद्वान होने के साथ-साथ विद्वानों का सम्मान भी करते थे। उन दिनों क्या, आज भी रायल सोसायटी का सदस्य मनोनीत होना बड़े सम्मान की बात समझी जाती है। बहुत ही विशिष्ट योग्यता वाले व्यक्तियों को ही इसका सदस्य मनोनीत किया जाता है। डा० साहा के रायल सोसायटी के सदस्य बनने पर गवर्नर सर विलियम ने उन्हें बधाई दी।

शिष्टता के अनुरूप डा० साहा ने उनके बधाई पत्र का उत्तर

देते हुए अपनी कठिनाइयों का पूर्ण विवरण उन्हें पत्र में लिख दिया। उपकरणों के साथ-साथ पुस्तकों के अभाव तथा प्रयोगशाला के लिए अन्य साज-सामान की कमी का भी उन्होंने अपने पत्र में उल्लेख किया। इसके साथ गवर्नर महोदय से प्रार्थना की कि वे इस कार्य के लिए आर्थिक सहयोग दें।

गवर्नर महोदय पर इस पत्र का उचित प्रभाव पड़ा और उन्होंने फौरन ही प्रति वर्ष पांच हज़ार रुपया देने की स्वीकृति दे दी। पांच हज़ार रुपये की राशि तो नगण्य थी परन्तु नियमित होने के कारण उसका महत्व था। डा० साहा ने सबसे प्रथम अपने लिए एक शोध सहायक नियुक्त किया। परन्तु साज-सामान, उपकरणों और पुस्तकों का अभाव ज्यों का त्यों बना रहा। डा० साहा ने जब देखा कि अन्य किसी स्रोत से सहायता मिलने की आशा नहीं तो उन्होंने लंदन की रायल सोसायटी को लिखा। रायल सोसायटी ने उन्हें बीस हज़ार रुपये के लगभग आर्थिक सहायता दी। इससे आवश्यक उपकरण खरीदे गए और लम्बे समय के बाद पुनः शोध कार्य आरम्भ हो सका।

बीच का दस-पद्रन्ह वर्ष का समय उपकरणों के अभाव में यूं ही बीत गया परन्तु डा० साहा के सामने अपना लक्ष्य सदैव स्थिर रहा। निराशा के क्षण उन्हें अपने ध्येय से विमुख नहीं कर सके। वे अपने मार्ग की कठिनाइयों से न कभी घबराए और न उन्होंने हार मानी।

दृढ़ निश्चय वाले व्यक्ति बार-बार कठिनाइयों के आने पर भी अपने लक्ष्य से विमुख नहीं होते और सदा अपने स्वप्नों को साकार करके ही संतोष प्राप्त करते हैं।

लंदन की रायल सोसायटी डा० साहा से पूर्व भी चार भारतीय वैज्ञानिकों को अपना सदस्य मनोनीत कर चुकी थी। उनमें श्रीनिवास रामानुजम, जगदीश चन्द्र बसु, और डा० सी० वी० रामन के नाम प्रमुख है। यह सम्मान प्राप्त करने वाले पांचवें भारतीय वैज्ञानिक डा० साहा थे।

विश्व भर में अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान समारोह बहुत पुराने समय से होते आए हैं। 1927 में इटली में अन्तर्राष्ट्रीय भौतिक विज्ञान कान्फ्रस हुई। डा० साहा को भौतिकी वैज्ञानिक के रूप में भारतीय प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। उन्होंने वहां नक्षत्रों के प्रकाश के चित्रों पर आधारित सिद्धान्त के सम्बन्ध में एक व्याख्यान भी दिया।

उन्हीं दिनों नार्वे में सम्पूर्ण सूर्य ग्रहण होने वाला था। सूर्य ग्रहण के दिन अनेक वैज्ञानिक दल सूर्य की रचना आदि के सम्बन्ध में अध्ययन करते हैं। नार्वे के एक वैज्ञानिक दल ने ऐसा अध्ययन करने का निश्चय किया था। डा० साहा भी उस अध्ययन दल में सम्मिलित हुए। इस दल ने जो प्रयोग किया उससे यह प्रमाणित हुआ कि सूर्य को किरणों के चित्रों के सम्बन्ध में डा० साहा ने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं वह सौ फीसदी सही हैं।

इंग्लैण्ड की एक और प्रसिद्ध संस्था 'इंस्टीट्यूट आफ फिजिक्स' ने भी डा० साहा को अपना सम्मानित सदस्य चुना।

1930 में बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी ने डा० साहा को अपना फैलो चुना।

1930 में बंबई में भारतीय विज्ञान कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। डा० साहा को उस अधिवेशन का सभापति चुना गया। इससे पूर्व भारतीय विज्ञान कांग्रेस के भौतिक और गणित विभाग के अध्यक्ष पद पर भी डा० साहा रह चुके थे।

विज्ञान कांग्रेस के बंबई अधिवेशन के सभापति पद से डा० साहा ने भारतीय वैज्ञानिकों के लिए बहुत ही व्यावहारिक सुझाव दिए। उन्होंने वैज्ञानिकों के संगठन की आवश्यकता पर बल दिया। साथ ही उन्होंने शोध कार्यों को सही ढंग से चलाने के लिए कुछ प्रस्ताव रखे।

विज्ञान सम्बन्धी तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए सृष्टि और नक्षत्रों के सम्बन्ध में कुछ नए रहस्यों का उद्घाटन किया। नक्षत्रों की उत्पत्ति, स्थिति, उनकी शक्ति और प्रकाश के विकिरण आदि

के सम्बन्ध में भी व्याख्या की।

देश में विज्ञान की प्रगति को सुचारू रूप से चलाने के लिए उन्होंने एक संस्था की स्थापना का सुझाव भी दिया। इस संस्था का नाम उन्होंने इंडियन अकादमी आफ साइंसेज रखने के लिए कहा। भारतीय वैज्ञानिकों ने उनके इस सुझाव का समर्थन और स्वागत किया। संस्था की स्थापना करने के लिए एक उप-समिति बनाई गई जिसे इस सम्बन्ध में रिपोर्ट तैयार करने के लिए कहा गया। एक वर्ष पश्चात् कलकत्ता में विज्ञान कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। उसमें वह रिपोर्ट प्रस्तुत की गई और जनवरी, 1935 में नेशनल इंस्टीट्यूट आफ साइंसेज की स्थापना कर दी गई।

डा० साहा ने अयन मण्डल के सम्बन्ध में जो महत्वपूर्ण कार्य किया था उसे ध्यान में रखते हुए 1935 में अमरीका के कारनेगी ट्रस्ट ने इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए डा० साहा को फैलोशिप के रूप में अच्छी आर्थिक सहायता दी। इससे वह विदेश यात्रा कर सकते थे।

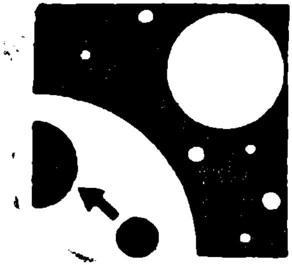
डा० साहा ने 1933 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अयन मण्डल के अध्ययन सम्बन्धी कार्य आरंभ किया था। धरती से सैकड़ों मील ऊपर आयोनाइज्ड वायु की अनेक परतें ही अयन मण्डल के निर्माण में सहायक होती हैं। रेडियो तरंगें भी अयन मण्डल द्वारा ही रेडियो प्रसारणों को ग्रहण करने के योग्य बनाती हैं। इतना सब होने पर भी अयन मण्डल के सम्बन्ध में अन्य अनेक ऐसी बातें थीं जिनके सम्बन्ध में और अधिक जानकारी की आवश्यकता थी। डा० साहा ने इस महत्वपूर्ण कार्य पर और आगे शोध प्रारम्भ कर दिया।

डा० साहा अब भारत के चोटी के वैज्ञानिकों में से थे जिनकी प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में मांग रहती थी। 1935 में डा० साहा कोपनहेगन विज्ञान कान्फ्रेंस में शामिल हुए। इसके पश्चात् वे अमरीका के हारवर्ड विश्वविद्यालय के त्रि-शताब्दि सम्मेलन में भाग लेने गए। इस प्रकार उन्हें योरोप और अमरीका के

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों से चर्चा करने का अवसर प्राप्त हुआ। इतना ही नहीं, उन्होंने हारवर्ड विश्वविद्यालय के बढ़िया उपकरणों से युक्त प्रयोगशाला में कुछ समय अनुसंधान कार्य भी किया।

डा० साहा कहीं भी हों, उनका ध्येय सदा विज्ञान की उन्नति के साथ अपने विषय पर केन्द्रित रहता था। वह कोई भी ऐसा अवसर हाथ से नहीं जाने देते थे जहां उन्हें विज्ञान सम्बन्धी उपकरणों की जानकारी प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होता हो अथवा विज्ञान सम्बन्धी नवीनतम साहित्य उपलब्ध होता हो।

उन्होंने अमरीका की अनेक उत्तम उपकरणों से सज्जित प्रयोगशालाएं देखी और विज्ञान साधना में रत सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों से अपने विषय से संबंधित विचारों का आदान-प्रदान किया।



एक और नया क्षेत्र

डा० साहा ने पन्द्रह वर्ष इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध रह कर बिताए। इस बीच उन्होंने अमरीका, योरोप आदि देशों की अनेक कान्फ्रेंसों में भाग लिया तथा अपने कार्य को और अधिक आगे बढ़ाया।

1938 में श्री तारकनाथ पालित ने कलकत्ता विश्वविद्यालय को भौतिकी पीठ स्थापित करने के लिए अच्छी धन राशि भेंट की। डा० साहा को भौतिकी के प्रोफेसर पद पर नियुक्त किया गया और वह इलाहाबाद से कलकत्ता लौट आए।

अभी तक डा० साहा और उनके सहयोगी तापीय आयोनाइजेशन और अयन मण्डल सम्बन्धी अनुसंधान कार्यों में लगे थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय में लौटकर डा० साहा ने सोचा कि वे क्यों न किसी अन्य विषय पर खोज चालू करें।

उन दिनों विश्व के वैज्ञानिकों में न्यूक्लीयर फिजिक्स की बहुत चर्चा थी। अमरीका के वैज्ञानिक लोग एटम की खोज के

सम्बन्ध में अपना कार्य बहुत आगे बढ़ा चुके थे। वहां के कुछ वैज्ञानिक अणु बम के निर्माण में लगे हुए थे। परन्तु यह सारा काम इतनी गुप्त रीति से किया जा रहा था कि स्वयं अमरीका में भी यह काम करने वाले वैज्ञानिकों को छोड़कर अन्य किसी को कुछ पता न था। वैज्ञानिक इतना अवश्य जानते थे कि परमाणु विज्ञान में न्यूट्रान का बहुत महत्व है।

एटम के तीन मुख्य भाग होते हैं···इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान। इलेक्ट्रान बहुत हल्का होता है। इसके कारण रेडियो, टेलीविज़न और एक्सरे का उपयोग सम्भव हो सका। प्रोटान अधिक सूक्ष्म, परन्तु हाईड्रोजन का अंश होता है। प्रोटान में धनात्मक विद्युत होती है। न्यूट्रान प्रोटान की अपेक्षा कुछ अधिक भारी होता है परन्तु उनसे विद्यु त चार्ज नहीं होता।

न्यूट्रान की एक विशेषता यह होती है कि वह प्रोटान को छिन्न-भिन्न होने से रोकते हैं। प्रोटान की विशेषता यह होती है कि यदि दो प्रोटान एक जगह इकट्ठे किए जाएं तो वे झटककर दूर जा पड़ेंगे। यदि वहां न्यूट्रान विद्यमान है तो प्रोटान इकट्ठे रहेंगे। न्यूट्रान दोनों की शक्तियों को उदासीन कर देता है।

डा० साहा का विचार था कि अणु सम्बन्धी इस नवीन क्षेत्र में भारत को भी शोध कार्य करना चाहिए। डा० साहा अब तक अपनी एक प्रयोगशाला स्थापित कर चुके थे। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपनी प्रयोगशाला को उस कार्य के योग्य बनाने का प्रयत्न आरम्भ किया। इसके लिए उपकरणों की भी आवश्यकता थी। वज्ञानिक उपकरणों के सम्बन्ध में यहां यह कह देना आवश्यक है कि जब कोई वैज्ञानिक किसी नवीन विषय पर खोज करता है तो वह अपनी आवश्यकता के अनुरूप स्वतः उसके लिए उपकरण अथवा यंत्र भी तैयार करता है। यह बात भिन्न है कि आगे चलकर उन उपकरणों द्वारा अन्य काम भी लिए जा सकें और उनका अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोग होने लगे। परन्तु इस कार्य के लिए धन को आवश्यकता होती है। डा० साहा के सामने भी

यही समस्या थी। वह चाहते थे कि प्रयोगशाला के उपकरणों के निर्माण के लिए वर्कशाप की स्थापना की जाय। परन्तु इसके लिए उन्हें काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

डा० साहा ने इस दिशा में जो प्रयास किए वह थे कास्मिक किरणों के अनुसंधान के लिए प्रयोगशाला का निर्माण।

इन किरणों की विशेषता यह होती है कि जब ये आकाश से पृथ्वी की ओर तेज़ी से आती हैं तो दिखाई नहीं देती। ये किरणें इतनी शक्तिशाली होती हैं कि वे धातुओं, पत्थरों और कंकरीट को भी पार कर जाती हैं। डा० साहा ने इन कास्मिक किरणों की अधिक जानकारी और उनके माप के लिए दार्जिलिंग में एक प्रयोगशाला की स्थापना की और वहां अपने दो सहयोगियों को इस काम के लिए नियुक्त किया।

कलकत्ता विश्वविद्यालय में आणविक अनुसंधान कार्य प्रारंभ कर दिया गया परन्तु उपयुक्त यन्त्रों के अभाव में काम कुछ दिन रुका रहा। इस कार्य के लिए साइक्लोट्रोन नामक बहुमूल्य यन्त्र की आवश्यकता थी। इसका मूल्य लगभग एक लाख रुपया था। टाटा प्रतिष्ठान ने इसके लिए लगभग साठ हजार रुपया अनुदान दिया। 1939 में आशा हो गई थी कि यह यंत्र खरीद लिया जाएगा और कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में इसकी स्थापना हो जाएगी।

यह यंत्र अमरीका के डा० लारेंस ने बनाया था। डा० साहा का एक शिष्य डा० लारेंस के साथ शोध कार्य में सहायता कर रहा था। उसी को यह यंत्र खरीदने का भार सौंपा गया। परन्तु उसी समय अर्थात् 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका ने सारे संसार को आक्रान्त कर दिया और इस यंत्र की खरीद का काम फिर खटाई में पड़ गया। डा० साहा ने उस समय भी हिम्मत न हारी और उन्होंने अपने अनेक अमरीकी और यूरोपीय मित्रों को लिखा कि आणविक क्षेत्र में जो प्रगति हो रही है उसकी सूचना इकट्ठी करके उन्हें पहुंचाई जाए।

संसार उस समय स्तब्ध रह गया जब अमरीका ने जापान के दो नगरों-हीरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम गिरा कर जापान को आत्मसमर्पण के लिए विवश कर दिया। तब संसार-भर के वैज्ञानिकों की आंखें खुलीं।

द्वितीय विश्व युद्ध लगभग 1944 तक चलता रहा। उस समय भारतीय वैज्ञानिकों का एक दल, जिसमें डा॰ साहा भी सम्मिलित थे, रूस और अमरीका की यात्रा पर गया। परन्तु वहां की सरकारों द्वारा अत्यधिक सतर्कता बरते जाने के कारण डा॰ साहा इस सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी प्राप्त न कर सके।

अनेक कठिनाइयों के बावजूद साइक्लोट्रोन नामक यंत्र के कुछ महत्वपूर्ण पुर्जे भारतीय वैज्ञानिकों के हाथ लगे। जो पुर्जे नहीं मिले थे उनका निर्माण कलकत्ता में किया गया और यंत्र की स्थापना हो सकी।

डा॰ साहा ने साइक्लोट्रोन नामक यंत्र द्वारा रेडियो फास्फोरस और रेडियो कैल्शियम का उत्पादन प्रारम्भ किया। ये दोनों ही वस्तुएं कैंसर के रोगियों की चिकित्सा में काम आती हैं। परन्तु कैंसर के कीटाणुओं का पता लगाने के लिए अनुवीक्षण यंत्र की आवश्यकता थी। इस यंत्र का मूल्य भी लगभग एक लाख रुपये था। परन्तु भारत में यह अनुवीक्षण यंत्र न तो प्राप्त ही था और न इससे कोई काम ही लेना जानता था। डा॰ साहा ने ही अन्त में इस कठिनाई पर भी विजय प्राप्त की। उन्होंने बंगाल के कुछ प्रमुख उद्योगपतियों से धन जुटाकर इस कार्य को सिद्ध किया। इस प्रकार के कार्यों से ऐसा प्रतीत होने लगता है कि डा॰ साहा का जीवन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिए ही था।

भारत में अणु युग का प्रारंभ

भारत के स्वतन्त्र होने के कुछ ही समय पश्चात् कलकत्ता विश्वविद्यालय में सन् 1950 में आणविक भौतिक संस्थान की

स्थापना की गई। इस संस्थान के डायरेक्टर पद पर डा॰ साहा की नियुक्ति हुई। यह ठीक है कि आज भारत आणविक शक्ति में बहुत उन्नति कर चुका है और उसने ऐसी योग्यता प्राप्त कर ली है कि यदि वह चाहे तो अणु बम का निर्माण कर सकता है। कुछ साल पहले राजस्थान के पोखरण नामक स्थान पर भूगर्भ में भारत ने अणु विस्फोट करके आणविक शक्ति में अपनी योग्यता सिद्ध कर दी थी। परन्तु भारत शान्तिप्रिय देश होने के नाते इस बात के लिए प्रतिबद्ध है कि वह अणुशक्ति का उपयोग शान्ति कार्यों के लिए ही करेगा। इस प्रकार डा॰ साहा ने आणविक क्षेत्र में जो कार्य किया वह सदा सम्मानपूर्वक स्मरण किया जाता रहेगा। आणविक भौतिक संस्थान आगे चलकर साहा इंस्टीट्यूट आफ न्यूक्लीयर फिजिक्स के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

डा॰ साहा ने इस कार्य के अतिरिक्त 'इंडियन एसोसिएशन आफ कल्टीवेशन आफ साइंस' नामक संस्था के पुनर्गठन में भी अपना समय लगाया। डा॰ साहा ने इन संस्थाओं की स्थापना द्वारा भारत में विज्ञान का एक नया युग लाने का प्रयत्न किया।

यदि देखा जाय तो विज्ञान का कार्य मानव की सेवा करना है। आज जो चीज़ें बिल्कुल साधारण प्रतीत होती है उनके निर्माण अथवा खोज के पीछे वैज्ञानिकों ने अपना कितना पसीना बहाया है, लोग इसे भूल जाते हैं। इसका कारण यही है कि आज जो वस्तुएं हमें आसानी से उपलब्ध होती हैं और जिनका हमारे जीवन से इतना सम्बन्ध हो जाता है उनकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। आज बिजली, रेडियो, टेलीविज़न, तार, इंजन आदि अनेक ऐसी चीजें हैं जिनके सम्बन्ध में हमें सोचने का भी समय नहीं मिलता।

भारत में तो अनेक कार्य आज भी ऐसे हैं जिनमें विज्ञान के प्रयोग से सामान्य जनता को बहुत लाभ पहुंचाया जा सकता है। 1938 में राष्ट्रीय नेताओं ने देश की आर्थिक स्थिति सुधारने के

लिए 'नेशनल प्लानिंग कमेटी' का निर्माण किया। जवाहरलाल नेहरू उसके प्रथम अध्यक्ष थे। इसके अधीन अनेक उपसमितियां बनाई गईं। बिजली, ईंधन, सिचाई आदि से सम्बन्धित दो उप-समितियों के डा० साहा सदस्य थे।

भारत में जल साधनों की कमी नहीं। यही कारण है कि बरसात के दिनों में भयंकर बाढ़ें आती हैं और मीलों क्षेत्र में गांव उजड़ जाते हैं और फसलें नष्ट हो जाती हैं। डा० साहा ने इन समस्याओं के समाधान के लिए भी अनेक प्रयत्न किए। डा० साहा के प्रयत्नों से ही दामोदर नदी घाटी योजना बनी। इस बांध के फलस्वरूप ही इस लम्बे-चौड़े क्षेत्र को सिंचाई, बिजली आदि के लाभ के साथ-साथ बाढ़ के कारण होने वाले विनाश से भी मुक्ति प्राप्त हुई।

भारत में अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं की स्थापना में डा० साहा का महत्वपूर्ण योगदान रहा। वे अपने कार्यों के कारण सदैव स्मरण किए जाते रहेंगे।

1953 में भारत सरकार ने डा० साहा को 'इंडियन साइंस एसोसिएशन' का डायरेक्टर नियुक्त किया। उन्होंने इस संस्था की उन्नति के लिए प्रयत्न किए थे। उन्होंने 'साइंस एण्ड कल्चर' नामक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रारम्भ किया। इस पत्रिका द्वारा उनका उद्देश्य यही था कि विज्ञान सम्बन्धी प्रगति का सरल भाषा में साधारण जनता तक प्रचार किया जाय। डा० साहा के प्रयत्नों से ही 'स्टैंडिंग एडवाइजरी बोर्ड आफ एस्ट्रोनोमी' की स्थापना की गई। इस समिति के निर्णयों के अनुसार भारत सरकार ने भारतीय सौर वर्ष और शक संवत् को राष्ट्रीय मान्यता दी।

डा० साहा ने भले ही स्वतन्त्रता आन्दोलन में सीधा भाग न लिया हो, परन्तु वह देश की उन्नति के लिए सदैव कार्य करते रहे। विज्ञान के क्षेत्र में देश को आगे बढ़ाने के लिए तथा वैज्ञानिकों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए उन्होंने जो कुछ किया उसे भुलाना कठिन है।

डा० साहा के अनुभव, विज्ञान में प्रगति और देश की उन्नति और भलाई के लिए दृढ़ लगन को देखकर उनके मित्रों ने उनसे आग्रह किया कि वे चुनाव में खड़े हों और लोकसभा में जाकर सरकार को प्रेरित करें कि योजनाओं का उपयोग उस रूप में किया जाय जिससे जल्दी से जल्दी देशवासियों को लाभ पहुंच सके। 1952 में वह निर्दलीय सदस्य के रूप में लोकसभा में प्रविष्ट हुए।

डा० साहा 16 फरवरी, 1956 को कुछ महत्वपूर्ण कागज़ लेकर लोकसभा की ओर जा रहे थे कि राह में चलते-चलते वह अचेत-से होकर गिर पड़े।

जो व्यक्ति जीवन भर अनेक कठिनाइयों के सामने कभी नहीं झुका था वह अंतिम क्षण तक उन कठिनाइयों से जूझता रहा। पिछले पांच-छः वर्षों में डा० साहा का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। उन्हें विश्राम की आवश्यकता थी क्योंकि उन्हें उच्च रक्त चाप और पक्षाघात का भी कष्ट था। परन्तु उन्होंने काम करना कभी भी बन्द न किया चूंकि उनका ध्येय था कि 'विघ्ने पुनः पुनरपि प्रति हन्यमाना, प्रारभ्य चोत्तम जना न परित्यजन्ति।'



डा० साहा का कार्य

डा० साहा के विषय थे गणित और भौतिक विज्ञान। विज्ञान के इस अंग से संसार के पदार्थों और ऊर्जा के सबंध में जानकारी प्राप्त होती है।

संसार के सभी पदार्थ किसी न किसी तत्त्व से बने हैं—मकान, दुकान, पेड़-पहाड़ यहां तक कि आकाश में टिमटिमाते तारे भी विभिन्न तत्त्वों से बने हैं जो इस संसार में मिलते हैं। इस प्रकार अनेक तत्त्वों की जानकारी के सम्मिलित होने के कारण यह विषय बहुत व्यापक स्वरूप धारण कर लेता है।

इस प्रकार स्थूल से स्थूल पदार्थों और सूक्ष्म से सूक्ष्म अणु का अध्ययन भी भौतिक विज्ञान में आता है। तारों के प्रकाश के संबंध में जानकारी परमाणु सिद्धान्त के आधार पर प्राप्त की जाती है। इसके लिए उन्होंने दूरबीनों की बजाय प्रिज्मों और ग्रेटिंगों की सहायता से अध्ययन किया। प्रिज्म एक पार्श्व का त्रिकोण के आकार का होता है उससे तारों आदि से निकलने

वाली विभिन्न प्रकार की प्रकाश किरणों के रंग पृथक्-पृथक् देखे जाते हैं। इस प्रकाश रंगों की सहायता से यह जानने का यत्न किया जाता है कि ऐसा प्रकाश किस तत्त्व का है। अर्थात् तारे किन अम्लों से मिलकर बने हैं।

यह बात आप इस प्रकार अधिक सरलता से समझ सकेंगे—

आपने वर्षा के दिनों में इन्द्र धनुष अवश्य देखा होगा। उसमें पृथक्-पृथक् रंग स्पष्ट दिखाई देते हैं। यह रंग आकाश में स्थित विभिन्न तत्त्वों से जब सूर्य की किरणें टकराती हैं तो उनके विभिन्न रंग छितराते हैं।

इसी प्रकार तारों के प्रकाश को प्रिज्मों और ग्रेटिगों से छितराने पर जो रंग दिखाई देते हैं, उन्हें स्प्रैक्ट्रम कहते हैं। डा० साहा ने इस संबंध में जा खोज की उसे साहा समीकरण कहते हैं। भारतीय विज्ञान के क्षेत्र में 20 वीं शताब्दी की यह काफी बड़ी उपलब्धि थी।

डा० साहा ने तारों के स्प्रैक्ट्रम के प्राकृतिक स्रोत क्या हैं आदि बातों का स्पष्टीकरण किया। उन्होंने देखा कि निरन्तर गरमी से पदार्थों में विघटन क्रिया होती है। गर्मी से पदार्थ गस में परिवर्तित होते हैं, गैस के कण या अणु साधारण पदार्थों में बदलते हैं और फिर विभिन्न तत्त्वों में, और अन्ततः अणु भी परमाणुओं में बदल जाते हैं। इस प्रकार परमाणुओं के विघटित होते रहने से उनके बाह्य इलेक्ट्रोन नष्ट हो जाते हैं। परमाणुओं के खण्डित होते जाने की प्रक्रिया को आयोनाइजेशन कहते हैं—खण्डित परमाणु अग्मन्द्र कहलाता है।

डा० साहा ने गैस की गति के संबंध में कुछ नियमों का पता चलाया। गैस झुण्ड के रूप में गतिशील रहती है उसके कणों की गति में कोई नियम नहीं होता। इस लिए गैस के सारे समूह के कामों पर गुणों की जांच की जाती है, पृथक् परमाणु की नहीं।

डा० साहा ने यह भी बताया कि परमाणुओं का विखण्डन या आयनीकरण उच्च तापमान=6000° सेंटी ग्रेड–पर ही

नहीं, कम दबाव के कारण भी होता है। औसत काम जब तक चलता रहता है जब तक उनके खण्डित होने और जुड़ने की गति-में ताल मेल नहीं बैठता।

यह सभी बातें साहा समीकरण से संबंध रखती है।

शायद आप यह सोचें कि तारों और परमाणुओं का हमारे जीवन से क्या संबंध ? परन्तु इसका हमारे जीवन से संबंध है— यदि अणु का और अधिक विखण्डन न हो तो रेडियो लहरें प्रवा-हित नहीं हो सकेंगी, ताप आगे को नहीं सरक सकेगा, विस्फोटक प्रतिक्रियाएं असम्भव हो जाएंगी।

दूर-दूर तक रेडियो प्रसारण पृथ्वी के वायुमण्डल में 40 से 400 मील तक की परमाणु पट्टी के कारण संभव होते हैं। इसी क्षेत्र में कुछ गड़बड़ होने पर शार्ट वेव रेडियो प्रसारणों में भी बाधा पड़ती है।

यद्यपि डा० साहा ने तारों और परमाणु से संबंधित विषयों पर विशेष रूप से खोज की परन्तु वह भी अपने साथी प्रोफेसर सत्येन्द्रनाथ बोस के समान अत्यन्त मेधावी और विभिन्न दिशाओं में कार्य करने वाले थे। जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्होंने अपने विषय से एकदम भिन्न क्षेत्रों में अन्यत्र महत्वपूर्ण कार्य किये। उन्होंने देश के औद्योगीकरण, राष्ट्रीय योजना आयोग, नदी घाटी योजनाओं, समाजवाद और कोआपरेटिव कृषि समस्याओं पर ध्यान दिया।

उनकी प्रतिभा, देशभक्ति और ईमानदारी [illegible] कत्ता के लोगों ने भारी बहुमत से 1951 के [illegible] सभा में भेजा। वह देश को बहुतम जल्दी [illegible] चाहते थे और वह इस बात से बहुत [illegible] की सीमा में रहकर एकदम क्रान्तिकारी [illegible] सकते। इस बात के लिए वह सोवियत [illegible]

करते थे परन्तु भारत लोकतन्त्र से प्रतिबद्ध होने के कारण परिवर्तन उस ढंग से नहीं कर सकता जिस प्रकार सोवियत रूस में किये गये। भारत इस दिशाओं में अपने ढंग से विकास के पथ पर अग्रसर है।

० ० ०

मुद्रक : सोहन प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32 5822

प्रेरणाप्रद, रोचक एवं सरल जीवन-चरित्र

मेरा बचपन	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	6/-
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	3/-
क्रान्तिकारी ऋषि कार्ल मार्क्स	लाला हरदयाल	4/-
हमारे राष्ट्र-निर्माता	सत्यकाम विद्यालंकार	5/-
महापुरुषों की झांकियां	आचार्य चतुरसेन	5/-
हमारे स्वामी	चमूपति, एम० ए०	4/-
महापुरुषों के संस्मरण	विश्वनाथ	4/-
गांधी जी से क्या सीखें	विश्वनाथ	3/-
सत्य का पुजारी	प्रकाश पण्डित	3/-
महापुरुषों का बचपन	प्राणनाथ वानप्रस्थी	4/-
आदर्श बालक	प्राणनाथ वानप्रस्थी	3/-
आदर्श देवियां	प्राणनाथ वानप्रस्थी	3/-
सच्ची देवियां	प्राणनाथ वानप्रस्थी	3/-
साहसी बालक	प्राणनाथ वानप्रस्थी	4/-
भारत के महान् ऋषि	प्राणनाथ वानप्रस्थी	3/-

शिक्षा भारती, कश्मीरी गेट, दिल्ली